वर्ष २ अंक १७
विक्रम संवत् २०७६ माघ
फरवरी २०२०

महर्षि दयानंद जयंती और
ऋषि बोध दिवस की
हार्दिक शुभकामनाएं

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

शिवरात्रि की वह घटना जिसने बालक मूल शंकर को युगांतर कारी देव दयानंद बना दिया

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

फरवरी 2020

वर्ष–२ अंक–१७,
विक्रम संवत् २०७६
दयानान्दाब्द– १९५
कलि संवत् – ५११६
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,११६

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९६३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय

१ बोधरात्रि का बोध (सम्पादकीय)

२ है कोई निर्माता (कविता)

३ वेदकाल, आर्यों का निवास.....

४ ऐ मेरे देश के वासियों सब सुनो (गीत)

५ Dayanand and Four Varna

६ मूर्तिपूजा,विज्ञान और अध्यात्म की कसौटी पर

७ दयानन्द : एक व्यक्ति के रूप में

८ हे महर्षि शत् शत् वंदन (कविता)

९ महर्षि दयानन्दः समाज संस्कृति और वेद धर्म के उद्धारक

१० वेदों के शिव

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

बोधरात्रि का बोध

घटनाएं तो नित्य घटती रहती हैं, यह सामान्य सी बात है परन्तु घटना तब महत्वपूर्ण स्मरणीय और समय को धन्य करने वाली हो जाती है, जब वह किसी मानव मन में कोई ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न कर देती है जिसका समाधान पाने के लिए मानव मन व्याकुल हो जाता है और इसी के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर देता है। यदि वह समाधान समाज के लिए कल्याणकारी और क्रांतिकारी हो तब तो कहना ही क्या? घटना चाहे छोटी हो या बड़ी उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसी ही एक छोटी सी घटना कभी शिवरात्रि में घटी जिसने एक बालक के सुकुमार मन में ऐसी जिज्ञासा जगा दी कि उसका समाधान खोजने में बालक ने घर बार, अकूत धन सम्पत्ति और यौवन के सुख सबको ठुकरा दिया। कंटकाकीर्ण बीहड़ वनों और हिमाच्छादित पर्वत मालाओं में भटकने और दारुण दुख प्रदान करने वाले तप के मार्ग का वरण कर लिया। इस घटना ने बालक को युग प्रवर्तक और महापुरुष बना दिया और एक बहुत बड़ी वैचारिक क्रान्ति को उत्पन्न करने का कारण बन गई। इसलिए यह अविस्मरणीय और महत्वपूर्ण हो गई। शिवरात्रि बालक मूलशंकर को महर्षि दयानन्द बनाकर स्वयं दयानन्द बोध रात्रि बनकर धन्य हो गई और अनगिनत लोगों का जीवन धन्य करने का श्रेय भी प्राप्त कर लिया। किसी कवि ने बहुत ठीक लिखा है –

जो ना आती टंकारा में फागुन की शिवरात।
हमारी कौन पूछता बात।।

घटना– अब घटना क्या थी यह जान लेते हैं। गुजरात प्रान्त के मोरबी शहर के समीप एक ग्राम है जिसका नाम टंकारा है। इसी ग्राम में कभी श्री कृष्ण या करसन जी तिवारी के घर में एक बालक ने जन्म लिया, उसका नाम मूलशंकर रखा गया। जब बालक लगभग 12 या 13 वर्ष का हो गया तब महाशिवरात्रि पर्व पर पिता के साथ शिवरात्रि का व्रत किया और शिव मंदिर पर रात्रि जागरण के लिए गया। लोगों में ऐसी धारणा प्रचलित थी कि जो रात भर जाग कर शिवजी की पूजा करता है भगवान् शिव उसे दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। बालक श्रद्धापूर्वक शिव की पूजा करके रात्रि जागरण करने लगा। उसके पिता और अन्य सभी भक्त सो गए किन्तु बालक आंखों में ठंडे पानी के छींटे लगाकर जागता रहा। मध्य रात्रि में उसने देखा कि कुछ चूहे बिलों से निकलकर शिव पर चढ़ाए गए भोग प्रसाद खाने लगे और एक चूहा शिवलिंग के ऊपर चढ़ गया। यह दृश्य देखकर बालक के मन में विचार आया कि यह शिव चूहों को दंड देकर भगाता क्यों नहीं? आचार्य मेधाव्रत जी के शब्दों में –

त्रिशूल धारी बहु रुद्र रूपा कैलाश वासी
किमयम्महेशः।
यद विक्रमैर्विस्मित विश्व चित्तम् श्रुतम्
कथायामतिवीर्यव्रत्तम्।।
यो दैत्यवृन्दद्विपदर्पनाशे, निरंतरम् सिंह समान तेजः।
कथं स तुच्छाखु तिरस्कृतांगः पराक्रमी नैव पराक्रमेत्।

अर्थात् बहु रूद्र रूप त्रिशूल धारी क्या यही कैलाश वासी शिव है जिसकी वीरता ने विश्व को विस्मित कर रखा है और मैंने कथाओं में जिसकी वीरता का वर्णन सुन रखा है? जो दैत्यवृन्दरूप हाथियों का दर्प नाश करने में सिंह के समान तेजस्वी है वह पराक्रमी इस तुच्छ चूहे के द्वारा निज अंगों को तिरस्कृत होते जान कर भी पराक्रम क्यों नहीं करता ?

बालक ने पिता को जगा कर अपनी जिज्ञासा का समाधान पाना चाहा परन्तु पिता ने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। पिता से यह जानकर यह तो शिव की प्रतिमा है वास्तविक शिव तो कैलाश पर्वत पर रहते हैं। बालक के मन में विचार आया कि तब हम यहां व्यर्थ बैठे हैं। उसी दिन से मूर्ति पूजा पर से उसका विश्वास जाता रहा। उसके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वास्तविक शिव है कि नहीं और क्या उससे मिला जा सकता है?

अभी बालक के मन में उत्पन्न जिज्ञासा पर उसकी मानसिक उधेड़बुन चल ही रही थी कि अचानक एक दिन उसकी छोटी बहन की मृत्यु हो जाती है और कुछ दिन बाद उसके अत्यंत प्रिय चाचा की भी मृत्यु

हो जाती है। इन दोनों घटनाओं ने मृत्यु का रहस्य जानने और उससे बचने की सम्भावना खोजने की प्रबल जिज्ञासा को जन्म दे दिया। उक्त जिज्ञासाओं ने बालक के मन को इतना व्याकुल कर दिया कि उसे घर छोड़कर समाधान खोजने पर विवश कर दिया। उसे सत्यान्वेषी पथिक बना दिया।

बालक मूलशंकर ने मन में उत्पन्न जिज्ञासाओं का समाधान खोजने का यत्न किया तो उसे विदित हुआ कि योगाभ्यास ही इसका एकमात्र उपाय है। अतः उसने घर का परित्याग कर दिया और योगियों का पता लगाना प्रारम्भ किया। वह योगियों और विरक्तों के संसार में जा पहुंचा। यहां उसे अनेक कटु अनुभव हुए। जिस भोग विलास और धन वैभव को वह छोड़ कर आया था यहां प्रायः सभी विरक्त वेश साधु संत नाम धारियों को उसी में फंसा हुआ पाया। कंचन कामिनी की आसक्ति में जकड़े विषय वासनाओं और मादक द्रव्यों का सेवन करते स्वयं का जीवन नष्ट करते और साथ में अन्य अनेक जनों का जीवन भी नष्ट भ्रष्ट करते हुए छल कपट से भरपूर मिला इनका संसार। कुछ अच्छे और सच्चे लोग भी मिले जिनका उसने भरपूर लाभ उठाया। कभी भी अपने ध्येय से विचलित नहीं हुआ। उसने विद्या अध्ययन प्रारम्भ किया और भाषा पर अधिकार प्राप्त करके तत्समय में प्रचलित ईश्वर और धर्म के नाम पर चलने वाले सभी मत पंथों का गहराई से अध्ययन किया। परन्तु उसे सन्मार्ग नहीं सूझ रहा था, जिज्ञासा का समाधान नहीं मिल पा रहा था। तभी किसी से ज्ञात हुआ कि मथुरा में एक नेत्रहीन संन्यासी रहते हैं वहां तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। सत्य का जिज्ञासु वहां जा पहुंचा और उनसे विद्यादान देने की विनती की।

मथुरा पहुंचने से पहले ही मूलशंकर ने संन्यास ग्रहण कर लिया था और उसका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती हो गया था। मथुरा के संन्यासी का नाम स्वामी विरजानन्द दंडी था। दंडी जी ने पढ़ाना तो स्वीकार कर लिया परन्तु एक शर्त पर। उन्होंने कहा कि अब तक जो कुछ पढ़ा है उसे भूल जाओ और जो भी ग्रंथ तुम्हारे पास हैं उन्हें यमुना नदी में फेंक आओ, अपने भोजन आवास का स्वयं प्रबंध करो। स्वामी दयानन्द ने शर्त स्वीकार करके अपने रहने खाने की व्यवस्था की, सब पढ़ा हुआ भुला कर और ग्रंथों को यमुना में बहा कर गुरु से पढ़ना प्रारम्भ किया। लगभग 3 वर्षों में उसे अपनी जिज्ञासाओं का समाधान मिल गया।

समाधान—दयानन्द को जो समाधान प्राप्त हुआ वह इस प्रकार था।

१—ईश्वर एक ही है अनेक नहीं, सभी नाम उसी एक ईश्वर के ही हैं। जिसे लोग वर्तमान में ईश्वर समझकर पूज रहे हैं वह ईश्वर नहीं है और जिसे ईश्वर पूजा समझते हैं वह ईश्वर पूजा नहीं है, जिसे ईश्वर भक्ति कहते हैं वह ईश्वर भक्ति नहीं है।

२—जो ग्रंथ ईश्वर और धर्म का ज्ञान कराने वाले मत मतान्तर वालों ने प्रचलित कर रखे हैं, वह धर्म ग्रंथ नहीं हैं। उनसे ईश्वर और धर्म का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता, मानव मात्र का धर्म एक ही है प्रचलित मत पंथ धर्म नहीं हैं।

३— ईश्वर और धर्म का ज्ञान केवल वेदों से ही होता है और वेदों को पढ़ने समझने के लिए आर्ष ग्रंथ हैं जो ऋषियों ने बनाए हैं।

४— ईश्वर की प्राप्ति केवल योगाभ्यास द्वारा ही सम्भव है।

५—ईश्वर को जान कर ही जन्म—मृत्यु के बंधन से मुक्ति मिलती है अन्य कोई उपाय नहीं है।

६—ईश्वर की प्राप्ति जीवात्माओं को स्वयं के अंतः करण में ही होती है इत्यादि।

स्वामी दयानन्द का समस्त कार्यकलाप उक्त समाधान पर ही आधारित है इसी को प्रतिष्ठित या स्थापित करने में उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया और प्राण न्योछावर कर दिए। उन्होंने प्रचलित मत पन्थों के विचारों, कार्यकलापों, कर्मकाण्डों को पाखंड बताया। उसे जनसामान्य का शोषण मनुष्य जन्म को नष्ट करने वाला ईश्वर और धर्म से विमुख करने वाला और असत्य घोषित किया। स्वामी दयानन्द की पहचान पाखंड का खण्डन करने वाले के रूप में प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने कार्य का प्रारम्भ ही हरिद्वार के कुंभ मेले पर पाखंड खण्डिनी पताका फहरा कर किया था। स्वामी दयानन्द पाखण्ड को हटाकर एक स्वस्थ समाज की स्थापना विश्व स्तर पर करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं के द्वारा स्थापित आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना लिखा।

गत 5000 वर्षों के पश्चात् होने वाला एकमात्र महापुरुष है स्वामी दयानन्द। जो श्रेष्ठता उच्चता में अनुपम और अद्वितीय है। मानवता का ऐसा महान् हित चिंतक और रक्षक ढूंढने पर भी कहीं नहीं मिलेगा। उस जैसा धवल चरित्र, न्यायप्रिय, सत्य वक्ता, अन्याय अत्याचार का निर्भीक विरोधी, परोपकार परायण और ईश्वर भक्त सारे संसार में नहीं मिलता। किसी उर्दू के शायर ने उसके बारे में लिखा भी था कि –

ये आसमाने–पीर गर ले हाथ में शम्सो–कमर।
चक्कर लगाए दरबदर, गाहे–अरब गाहे–अज़म।
आफाक में कोई बशर आए नज़ीर उसकी नज़र।
है गैरमुमकिन सरबशर, ईमान से कहते हैं हम।।

अर्थात् यह बृहद आसमान अगर हाथ में सूर्य और चंद्रमा लेकर हर स्थान पर इधर से उधर सब दिशाओं में चक्कर लगाए तो भी स्वामी दयानन्द जैसा उदाहरण वाला मनुष्य उसे कहीं दृष्टिगोचर हो जाए यह सम्भव नहीं असम्भव है, यह मैं ईमान से, सच्चे विश्वास से कह रहा हूं।

दयानन्द की एक स्वस्थ विश्व समाज की स्थापना कहीं से भी अव्यावहारिक नहीं है। वह स्पष्ट कहता है कि पाखंड और समाज एक साथ नहीं रह सकते। स्वस्थ समाज बनाना है तो पाखंड को मिटाना ही होगा। दयानन्द ने विश्व मानव समुदाय में प्रचलित चार विचारधाराओं को एक स्वस्थ विश्व समाज के निर्माण कार्य में बाधक माना है। एक पुराणी दूसरे जैनी तीसरे कुरानी और चौथे किरानी अर्थात् ईसाइयत। यह चारों मत ऐसे हैं जो एक दूसरे को पसंद नहीं करते उल्टे एक दूसरे का सर्वनाश चाहते हैं। यह पंथ मनुष्य की कीमत उसके गुणों के आधार पर नहीं करते अपितु अपनी मत वादी मान्यताओं और पनथाई वेशभूषा के आधार पर करते हैं।

इनके कारण सारा विश्व समाज वर्गों और उप वर्गों में बंटकर एक दूसरे का खून पीने और मारकाट करने में लगा है। दयानन्द ने इन्हें पाखंडी माना है और इनका पुरजोर खंडन किया है और यह सिद्ध कर दिया है कि ये मानवता के घोर विरोधी है। ये सत्य से और वास्तविक धर्म से बहुत दूर जा चुके हैं। इसलिए उक्त चारों सम्प्रदाय या मत दयानन्द के घोर विरोधी हैं। इसके अतिरिक्त ये बात भी है कि झूठे चरित्रहीन, असामाजिक, असंयमी, कामचोर, मुफ्त खोर, अन्यायप्रिय, अत्याचारी, मांसाहारी और दुर्व्यसनी लोग कभी स्वामी दयानन्द को पसंद नहीं कर सकते और न उसके अनुयायी हो सकते हैं। जो लोग स्वामी दयानन्द की उपेक्षा अथवा उसका विरोध करते हैं उनके जीवन पर दृष्टिपात करने पर ऊपर लिखे गए दोषों मे से कोई न कोई दोष अवश्य विद्यमान मिलेगा।

उक्त दोषों से युक्त मनुष्य नाम मात्र के ही मनुष्य होते हैं। वस्तुतः मानवता और समाज के घोर शत्रु होते हैं, ये लोग दोहरे चरित्र वाले होते हैं। भले होने का दिखावा करते हैं परन्तु सदैव शोषण, प्रताड़न और परस्वहरण का कार्य करते हैं। पाखंडी मनुष्य सामाजिक कदापि नहीं हो सकता।

वर्तमान संसार वैचारिक दृष्टि से इतना बौना और चारित्रिक दृष्टि से इतना ओछा हो चुका है कि वह चाह कर भी दयानन्द की विशालता और उच्चता का स्पर्श नहीं कर पा रहा। परन्तु दयानन्द आज भी प्रासंगिक और व्यावहारिक है। उसकी वैचारिक विरासत को सम्भाल कर रखना जरूरी है। परन्तु दयानन्द का उत्तरदायित्व सम्भालने वाला कथित आर्य समाज और ऐसी अन्य संस्थाएं कथित से तथाकथित हो चुकी हैं। ये कुरानी, किरानी के खंडन में तो मस्त हैं किन्तु जैनी और पुराणी की वकालत करने में लगे हैं। आज आर्य समाज उन्हीं नस्ली अहंकार ग्रस्त सामंती सोच वाले शोषक चरित्रहीन पाखंडियों का साथ देने में लग रहा है जिनका स्वामी दयानन्द ने खंडन किया था और जिन्होंने निर्दयता पूर्वक दयानन्द की हत्या कर दी थी। इनको विजयी बना देने से दयानन्द प्रतिष्ठित होगा, वैदिक धर्म प्रतिष्ठित होगा या पौराणिक पाखंड? जिन तर्कों को लेकर आर्य समाज पौराणिकता का खंडन करता था आज दलित कहलाने वाले लोग उन्हीं तर्कों को लेकर पौराणिकता का खंडन करने में लगे हैं और मुसलमानों के साथ खड़े हैं। इधर आर्य नेता और पंडित पौराणिकता के बचाव में उतर कर पाखंड के समर्थन में जुटे हुए स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हैं। मैं तो इन्हें आर्य समाज का नेता और दयानन्द का अनुयायी मानता ही नहीं। ये सब नस्ली अहंकार ग्रस्त मुफ्तखोर शोषक, सामंती सोच वाले लोग हैं। इनकी कोई औकात नहीं, कोई जनाधार नहीं है। इनसे दयानन्द के सपने साकार

करने और वैदिक सिद्धांतों की रक्षा करने की आशा करना व्यर्थ है। इन लोगों ने दयानन्द और आर्य समाज को हिंदुत्व रूपी नमक की खान में घुसेड़कर गला कर नमक बना डाला है उसी में लग रहे हैं। आर्य समाज का भविष्य उज्जवल नहीं अंधकारमय है। **परन्तु जब भी कभी सच्चे और अच्छे मनुष्य और स्वस्थ मानव समाज की आवश्यकता मनुष्य समुदाय को प्रतीत होगी तब उसे दयानन्द की शरण में ही आना होगा अन्य कोई मार्ग नहीं।** इति

सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः

– वेदप्रिय शास्त्री

है कोई निर्माता

है कोई निर्माता, जग का है कोई निर्माता।
शिल्पकार कोई सृजन कर रहा, नज़र नहीं पर आता।।१।।

स्थिति- गति के विना असम्भव, बनना कुछ दिखलाता।
ज्ञानशून्य जड़ प्रकृति आदि का, कौन भला गतिदाता ।।२।। है कोई......

अति सुनियोजित और प्रयोजन सहित पदार्थ बनाता।
ज्ञान और क्रम पूर्वक रचना, रचकर कौन टिकाता ।।३।।
है कोई......

जड़ परमाणु-जीव का अद्भुत, जो संयोग मिलाता।
अच्छे और बुरे कर्मों का, कौन यहां फलदाता।।४।।
है कोई......

जन्म-मरण, संहार-सृजन का चंचल चक्र चलाता।
सूर्य चन्द्र पृथ्वी ग्रहादि का, कौन वशी और धाता ।।४।।
है कोई......

जो निमित्त कारण इस जग का, और ज्ञान का दाता।
उसी सच्चिदानन्द ब्रह्म का, "वेदप्प्रिय" उद्गाता।।
है कोई......

– वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाड़ी, केलवाड़ा

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पड़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचार वान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कंप्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

वेदकाल निर्णय और आर्यों के निवास के सम्बन्ध में अज्ञानता

– अखिलेश आर्येन्दु

भारतीय समाज के अग्रणी माने जाने वाले नेताओं में श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ने राजनीति और सामाजिक कार्यों के अतिरिक्त वेद–शास्त्रादि विषयों पर भी स्वाध्याय किया और अपना दृष्टिकोण सामने रखने का प्रयास किया। सामान्य ज्योतिष और गणित विद्या भी उन्होंने पढ़ी थी। यही कारण है कि वे गीता और वेदादि विषयों पर भी अपनी समीक्षा या समालोचना प्रकट कर सके। तिलक महोदय ने वेद और गीता पर विस्तार से लिखा है। इतिहास पर भी उन्होंने दृष्टि दौड़ाई है। इसी क्रम में उन्होंने वेदकाल पर भी अपना दृष्टिकोण प्रकट किया, जिनकी मैंने पिछले दो अंकों में समीक्षा की। दरअसल, तिलक महोदय ने जिन प्रमाणों के बूते वेदकाल निर्धारित करने का प्रयास किया, वे प्रमाण या तर्क किसी भी दृष्टि से वेदकाल के उनके दृष्टिकोण को प्रमाणित नहीं करते हैं। मेरे विचार से वेदकाल का समय निर्धारित करना उतना ही असम्भव है जितना कि सृष्टिकर्ता परमेश्वर की आयु निर्धारित करना। आजतक जितने भी इतिहासकारों, विद्वानों और गवेषकों ने वेद का समय निर्धारित करने का प्रयास किया, वे सफल नहीं हुए हैं। यह इस लिए कि वेद को सभी ने पहले से ही एक दायरे में देखने का प्रयास किया। किसी ने वेद को ईश्वरीय वाणी मानकर देखने का प्रयास ही नहीं किया। महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हुए जिन्होंने वेदों को ईश्वरीयवाणी मानकर और जानकर उनका गहराई से स्वाध्याय किया, अनुसंधान किया, पड़ताल की–वेदों के उद्भव, उनकी भाषा, ज्ञान–विज्ञान और उद्देश्य को लेकर। जब महर्षि के ज्ञान–अनुभव–साधना में वेद ईश्वरीय वाणी सिद्ध हुए तभी उन्होंने वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक घोषित किया। ऐसा सत्साहस, प्रयास और अनुसंधान महर्षि दयानन्द के पूर्व किसी से नहीं किया था। इसलिए यदि वेदों को समझना, जानना, मानना और प्रचारित करना है तो महर्षि के दृष्टिकोण को और उनकी वेदों के प्रति निष्ठा–श्रद्धा को भी अपनाना होगा। वेदमाता स्वयं को उसी मनीषी–साधक के सामने अपना रहस्य प्रकट करती हैं जो उसके लायक होता है। अभी तक मैंने वेदकाल–निर्णय के सम्बन्ध में जो समीक्षा की, वह कहीं न कहीं महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण का भी अनुकरण करती है। यह इसलिए कि मेरी दृष्टि में महामानव दयानन्द के पूर्व वेदों की गहराई, उनके महनीय और मननीय विचार–तत्त्वों और विद्या–ज्ञान को कोई सम्पूर्णता में समझ ही नहीं पाया था। मेरा ही नहीं, श्री अरविन्द का भी मानना है कि वेदों को समझने के लिए दयानंद के चरणों में बैठने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है। प्रस्तुत लेख श्रीमान तिलक के दृष्टिकोण को समेटते हुए अन्य विद्वानों के दृष्टिकोण को समझने और पड़ताल करने की दिशा में है। आशा है पाठकगण, इसका स्वध्याय करेंगे। *–सम्पादक*

महर्षि दयानन्द और अन्य विद्वानों की दृष्टि

वेदकाल के विषय में पिछले अंकों में अनेक देशी–विदेशी (भारतीय–यूरोपीय) विद्वानों के वेदकाल निर्धारण सम्बंधी अनेक दृष्टिकोणों की समीक्षा करते हुए हमने देखा कि वेदकाल को अन्य सामान्य ग्रंथों की तरह ही देखा और समझा गया। यही कारण है कि कोई भी विद्वान् या इतिहासकार 12000 वर्ष पूर्व से पीछे जाने की हिम्मत नहीं कर पाया। इसके पीछे कई कारण थे। पहला कारण यह था कि विदेशी विद्वानों ने वेदों का समय निश्चय जिस आधारों पर किया, उन आधारों के इतर किसी ने कालगणना करने के लिए विचार ही नहीं किया। किसी ने यह नहीं विचार किया कि अंग्रेज हो सकता है, अपने कुछ निहित स्वार्थों के वशीभूत होकर काल गणना कर रहे हों? दूसरी बात वामपंथी इतिहासकारों या विद्वानों ने वेदकाल निश्चय करते समय विदेशी विद्वानों का ही अनुकरण किया। वामपंथी इतर विद्वानों ने वेदों को सायण, महीधर आदि तान्त्रिकों द्वारा वेदों के दृष्टिकोण का अनुसरण किया। भारतीय इतिहाकारों ने वेदों को सामान्य पुस्तक मानकर उसके काल का निर्धारण किया। और कुछ अर्ध वैदिक विद्वानों

ने वेदों को रहस्यमयी ग्रंथ मानकर उसे जादू–टोने वाला ग्रंथ माना और उसे सिरफिरों द्वारा बनाया गया मानकर उसके काल का निर्धारण किया ।

सभी सत्य विद्याओं के आदि स्रोत वेद ग्रंथ को पहली बार महर्षि दयानन्द ने वेदों को वेदों के अनुसार देखने–समझने का पुरुषार्थ किया। यही कारण है महर्षि जब वेदों के काल निर्धारण के सम्बन्ध में विचार रखते हैं तो वह प्रमाण–कोटि में ठहरता है और तर्क सम्मत भी। महर्षि के अनुसार वर्तमान सृष्टि एक अरब सत्तानवें करोड़ उनतीस लाख उनचास हजार से अधिक है। यह सृष्टि संवत् और वेद संवत् दोनों है। यह भारतीय वैदिक पम्परा का निर्धारण है जिसे महर्षि दयानन्द स्वीकार करते हैं। इसके निर्धारण में महर्षि दयानन्द लिखते हैं– आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ किया हुआ है। यह परम्परागत चलता आया है। उसी के अनुसार वार्षिक पंचांग बनते हैं, उनमें भी मिती से मिती बराबर चली आती है। आर्यों के नित्य प्रति होते रहने वाले धार्मिक कृत्यों के आरम्भ में बोला जाने वाला संकल्प 'ओं तत्सत्'आदि इसके प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त **अविनाश चन्द्र वातस्याश्वो वायोः सखायो देवेषितो मुनिः। उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः।।(ऋ. 10/136/5)** के मंत्र का उल्लेख करते हुए कहते हैं– इस मंत्र में भूगर्भ शास्त्र का वर्णन है, जिसका काल 50000 वर्ष पूर्व का ठहरता है। मंत्र में उल्लिखित पूर्व तथा पश्चिम के दो समुद्र कौन से हैं, इस बात को स्पष्ट करते हुए दास बाबू कहते हैं कि जब वैदिक आर्य सप्तसिन्धु प्रदेश में रहते थे तो उसके पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर समुद्र था। पश्चिम में तो अब भी है। पर पूर्व में 50 हजार वर्ष तक था। इसी को ऋग्वेद में अपर समुद्र कहा है। इस आधार पर ऋग्वेद का काल 50 हजार वर्ष ईसा पूर्व तक पहुँच जाता है। अविनाशदास महोदय के इस काल निर्धारण में भी कोई ऐसी बात नहीं है जिससे पता चल सके कि उन्होंने वेदों की भाषा, ज्ञान, स्वरूप और विषय को समझकर वेदकाल का निर्धारण किया है। जिस ऋग्वेद के मंत्र का वे उल्लेख करते हैं उसमें भूगोल और इतिहास दोनों नहीं है । उसका प्रकरण ही भिन्न तरह का है। इसलिए अविनाश बाबू का वेदकाल निर्धारण प्रमाण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है।

एक अन्य विद्वान् डॉ. ज्वाला प्रसाद हैं, जो भूगर्भ साक्षी के आधार पर वेदकाल का निर्धारण करते हैं। आप के अनुसार वैदिक संस्कृति कम–से–कम 5 लाख वर्ष पूर्व में विद्यमान थी। वे कहते हैं, यह बात अविश्वसनीय भले लगे, लेकिन इससे बचा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान् पं. दीना नाथ चुलैट ने ज्योतिष के आधार पर वेदों का काल कम से कम 3 लाख वर्ष पूर्व माना है। चुलैट महोदय इसके पीछे यह तर्क देते हैं– वसन्त–सम्पात सब नक्षत्रों पर वामगति से घूमता हुआ 25800 वर्षों में फिर उसी नक्षत्र पर आ जाता है–यह सर्व ज्योतिषि–सम्मत सिद्धान्त है। इसके अनुसार गणना करने पर ज्ञात होता है कि कात्यायन श्रौत सूत्र के भाष्यकार कर्काचार्य के समय वसंत–सम्पात सूर्य के तुलासंक्रमण के समय आश्विन् मास में हुआ था। इससे उसका समय आज से लगभग 15 हजार वर्षपूर्व सिद्ध होता है। इसी ज्योतिषशास्त्र की गणना के अनुसार पारस्कर गृह्यसूत्रकार का समय 'मार्गमास्यामाग्रहायणी कर्म' इत्यादि सूत्रों को ध्यान में रखते हुए वसन्त–सम्पात मूल नक्षत्र के तारे पर होने के कारण आज से 19 हजार वर्ष पूर्व के लगभग सिद्ध होता है। वेदांग ज्योतिष का समय धनिष्ठा नक्षत्र–विभाग के आरम्भ पर वसन्त–सम्पात होने के कारण आज से लगभग 23950 वर्ष पूर्व वेदों का समय कम से कम 3 लाख वर्ष है। पं. दीनाथ चुटैल का यह विवेचना तिलक की विवेचना से मिलती जुलती है। क्योंकि जिस ज्योतिष के आधार पर उन्होंने गणना की है, वैसा तो सृष्टि में बार–बार आता रहता है। इसलिए 3 लाख वर्ष का निर्धारण भी वेदकाल को निश्चय करने में सफल नहीं कहा जा सकता है।

पावगी महोदय ने भी वेदकाल निर्धारण किया। आप के अनुसार भूगर्भ शास्त्र से यह प्रमाणित होता है कि वेदों का काल कम–से–कम 24000 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। इन विद्वानों के अतिरिक्त कुमारा स्वामी, कपाली शास्त्री और श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आदि वैदिक विद्वानों ने वेदों के काल निर्धारण किए हैं, लेकिन इसमें से किसी विद्वान् ने वेदों को सृष्टि के साथ उत्पन्न हुआ नहीं माना है।

अब महर्षि दयानन्द द्वारा वेदकाल को समझ लेते हैं। अथर्ववेद का मंत्र है –**देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। (अथर्ववेद 10/8/32)** वेद ऐसा काव्य है जो

न कभी मरता है, न कभी पुराना होता है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं–जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं, इसी प्रकार से पूर्व–कल्प में थे और आगे भी होंगे, क्योंकि ईश्वर की जो विद्या है, सो नित्य एक रस ही बनी रहती हैं, उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता। सो ऋग्वेद से लेकर चारों वेदों की संहिताएँ अब जिस प्रकार की हैं कि इसमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का क्रम से वर्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उनकी वृद्धि, क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती, इस कारण से वेदों को नित्य ही मानना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने वेदों की उत्पति को सृष्टि के साथ माना है। उपरोक्त वेद मंत्र से भी यही सिद्ध होता है। वेद के उक्त मंत्र के अनुसार वेद परमात्मा का महाकव्य है जो न तो कभी मरता है और न ही पुराना होता है। इसलिए वेद को जो ईसा से पांच–छः या दो–चार लाख वर्ष पुराना मानते हैं, उन्होंने वेद का न तो स्वाध्याय ही कभी किया और न ही वेद की उन्हें किसी प्रकार की समझ ही है। मनुष्य की जन्मतिथि का निर्धारण भी वैदिक परम्परा में किये जाने का विधान है वैसा ही विधान वेदों के काल निर्धारण में भी चलता आया है। इसलिए हमें आवश्यकता नहीं है वैज्ञानिक उपकरणों तथा परीक्षणों की। परीक्षण या पड़ताल वहाँ की जाती है जहाँ पहले से ही किसी बात का ठीक–ठीक निश्चय नहीं होता है। जैसे जिसकी जन्मपत्री या स्कूल का प्रमाणित सार्टिफ़िकेट नहीं होता या जिसका नाम–पता नगरपालिका के रिकार्ड (जन्म–मृत्यु पंजिका) में नहीं मिलता, उसी की आयु का निश्चय करने के लिए आयुर्वेज्ञानिक परीक्षण की आवश्यकता होती है।

आर्यों का निवास–स्थान

आर्यों के निवास स्थान के सम्बंध में वैदिक–अवैदिक, वामपंथी–यूरोपीय या विदेशी विद्वानों, इतिहासकारों और पुरातत्ववेत्ताओं के विचार भिन्न–भिन्न रहे हैं। जिस प्रकार से वेदकाल के निश्चय में अनुमान, परीक्षण, ज्योतिषादि का आधार निश्चित किया गया उसी तरह से आर्यों के निवास–स्थान के सम्बंध में भी अनेक तरह के अनुमान, परीक्षण और कल्पनाएं प्रस्तुत की जाती रही हैं। आजतक विश्व के इतिहाकारों, विद्वानों और पुरातत्व से जुड़े जानकारों के मध्य एक मत नहीं हो पाया कि आर्यों का निवास –स्थान कहाँ पर था। आर्य भारत के ही मूल निवासी थे या कहीं बाहर से आए। मैंने इस श्रृंखला के प्रथम अंक में ही इस बात की चर्चा की थी कि अंग्रेजों ने ईसाइयत, ईसाई मत, बायबिल, अपनी सभ्यता–संस्कृति और साम्राज्य को चिरस्थाई बनाए रखने के लिए मैक्समूलर जैसे कुछ संस्कृत और हिंदी जानने वाले विदेशी और ईसाई विद्वानों को इस कार्य में लगाया था कि वे वेद की मनमानी व्याख्याएं प्रस्तुत करके वेदादि शास्त्रों, वैदिक या हिंदू धर्म, भारतीय संस्कृति–सभ्यता को ईसाई मत, बायबिल, अंग्रेजी संस्कृति–सभ्यता और अंग्रेजी भाषा से कमतर सिद्ध करें। उन्हें इसके लिए जो भी हथकंडे अपनाने पडें, वे अपनाएं। और हम जानते हैं कि विदेशी विद्वानों, इतिहासकारों और पुरातत्ववेत्ताओं ने भारतीय संस्कृति–सभ्यता, भाषा, ग्रंथ–वेदादि शास्त्रों और शिक्षा के सम्बन्ध में वहीं लिखा जो ब्रिटिश राजसत्ता चाहती थी। और हम यह भी जानते हैं कि विदेशी अंग्रेजों के इस षड्यंत्र के शिकार हमारे इतिहासकार (वामपंथी), विद्वान् और पुरातत्वशास्त्री हुए। जिसका यह परिणाम रहा कि भारत के 72 वर्ष की राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद भी हमारी नई पीढ़ी वही पढ़ रही है जो अंग्रेज या उनके अनुचर चाहते थे।

जिस गति से विश्व स्तर पर आर्थिक प्रगति हुई है और जिस शिक्षा के बल पर समाज में संसाधनों का जंजाल या जाल बढ़ा है, उससे नई पीढ़ी में गवेषणा, अनुसंधान, सच्चाई, परीक्षण और जिज्ञासा की प्रवृति लगातार घटती जा रही है। सोशल मीडिया के इस ज़माने में भारत की नई पीढ़ी को अपना गौरवमयी इतिहास, संस्कृति और धर्म के सम्बन्ध में जानने की कोई रुचि ही नहीं है। उसे मीडिया के माध्यम से जो बताया, सुनाया और जनाया जा रहा है, वही सुन, जान रही है। यही कारण है, आज की भारतीय पीढ़ी अत्यन्त स्वार्थी, पिछलग्गू, पराधीन, संकुचित स्वभाव की और अर्थ को ही जीवन का पर्याय मानने वाली बन गई है। वह समझ ही नहीं पा रही है या समझना ही नहीं चाहती कि वेद–शास्त्र, वैदिक संस्कृति–सभ्यता, वैदिक शिक्षा, वैदिक ज्योतिष (गणित), साहित्य, कला, जीवन–धर्म व जीवन–विज्ञान और आहार–विहार का जीवन में मूल्य और महत्व क्या है। जो इतिहास

सोशल–मीडिया के माध्यम से वह पढ़–देख रहा है, उस इतिहास के प्रति उसकी कोई अपनी राय नहीं है। ऐसे में भारत के मूल निवासी का मुद्दा उसके लिए अभिरुचि का विषय बने, सम्भव नहीं दिखता।

आर्यों के निवास स्थान और उनके साम्राज्य के सम्बंध में इतिहास की पुस्तकों और जन–संवादों के माध्यम से अनर्गल और झूठ पढ़ाया, समझाया और बताया गया है कि उसमें 'सत्य की जिज्ञासा' लगभग समाप्त दिखती है। भारतीय इतिहास के प्रति, विशेषकर आर्यों के निवास–स्थान, उनके कार्य, वेदाादि–शास्त्र और वैदिक धर्म की सर्व–स्वीकारता बढ़ाने में अब न हमारा कोई उद्देश्य है और न ही कोई योजना ही। यह श्रृंखला मैंने इस लिए प्रारम्भ की है कि नई और पुरानी दोनों पीढ़ियों को भारत के मूल–निवासी –आर्यों के सम्बंध में समाज में फैली भ्रंतियों को समाप्त कर सत्य को स्थापित करने में मेरी थोड़ी–सी भूमिका बन सके और साथ ही, वेदों के सम्बन्ध में पाठकों को महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

अगले अंक में आर्यों के मूल निवास के सम्बंध में विस्तार से लिंखूगा।

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरूगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।
(ऋग्वेद ७/३५/१५)

अर्थ :– पूजनीय विद्वान्, यज्ञमय जीवन जीने वाले ज्ञानी, यशस्वी देव जन, धर्म के जानने वाले हमको उत्तम ज्ञान का प्रकाश करे। हे देवो ! आप अनेक सुखों द्वारा सदा हमारी रक्षा करें ।

शहीदों के लिए
ऐ मेरे देश के वासियो सब सुनो

ऐ मेरे देश के वासियों सब सुनो, तुम शहीदों के गीतों को गाना सदा।
जान वो देश पर हैं लुटा कर गये, इसलिए शीश उनको झुकाना सदा।।
ऐ मेरे देश के......

देश के ही लिए मर गए और जिये,देशहित यातनाओं के प्याले पिये।
देश के ही लिए सब ने ओढ़े कफ़न, आँसू उनके लिए तुम बहाना सदा।। 1
ऐ मेरे देश के......

क्रान्ति पथ पै सुनो थीं लड़ीं नारियाँ, पैदा करती रहीं रोज चिनगारियाँ।
अपने बेटों व पतियों की दे दी बलि, उनके साहस पै मस्तक झुकाना सदा।2
ऐ मेरे देश के.....

छोटे बच्चे लड़े, वृद्ध जन भी अड़े, सारे गोरों के सम्मुख हुए थे खड़े।
इन्कलाबी उठाये जवानों ने स्वर,मातरम् वन्दे तुम गाते जाना सदा।। 3 ।।
ऐ मेरे देश के.....

क्रान्ति की देश में ऐसी आँधी चली, क्रूर गोरों में मच थी गई खलबली।
देख आक्रोश वीरों का गोरे भगे, उनका रहने न पाया ठिकाना सदा।। 4 ।।
ऐ मेरे देश के.....

उनको कोडों से अक्सर था मारा गया, पीट कर खाल को था उतारा गया।
क्रान्ति पथ से न बिल्कुल वो पीछे हटे, उनकी गाथा को तुम पढ़ते जाना सदा
ऐ मेरे देश के.....

काले पानी की सहते रहे यातना, माफी माँगी नहीं न करी याचना।
देशहित कोल्हू हरदम चलाते रहे, उनके गीतों को श्रद्धा से गाना सदा।।6
ऐ मेरे देश के.....

गोलियाँ मारकर खूँ बहाया गया, तोप से बाँधकर के उड़ाया गया।
कोई जिन्दा जलाया गया आग में, उनके लोहू के ऋण को चुकाना सदा।।7
ऐ मेरे देश के.....

क्रूर गोरों से बिल्कुल भी घबराये ना, गोरे उनको तो भयभीत कर पाये ना।
फन्दे ख़ुद फाँसियों के रहे चूमते, उनके पथ पै सभी बढ़ते जाना सदा।। 8
ऐ मेरे देश के.....

उनके गीतों को हम भी सदा गायेंगे, गाथा उनकी सदा यूँ ही दोहरायेंगे।
वीर बलिदानियों की हमेशा हो जय, गीत ***"रोहित"*** के सँग गाते जाना सदा
ऐ मेरे देश के.....

- रोहित आर्य,
मोब-8958682489

DAYANAND AND FOUR VARNAS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Indian Culture is basically Vedic Culture. Bharat was on the top when she used to follow the Vedic System without failing. She will again be on the top when she follows the Vedic System more effectively.

The System of Four Varnas is one of the salient features of Vedic Society. Four Varnas are the four pillars and Vedic Society is the palace built on them. As a palace cannot stand without its pillars, so can Vedic Society not stand without Four Varnas. These Varnas are not absent today. So, they are not to be created or defined. They are just to be streamlined and promoted. The only question is as to who will streamline them and how?

Vedic Society has produced several Rishis and Munis including Rishi Dayanand. He advocates Four Varnas, and says in the third and fourth chapters of 'Satyarth Prakash' as follows:-

'It is bad to give up the duties of Varnas and Ashramas'. 'Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas, Shudras, women, servants, and the lowest of the low, should read and preach the Vedas'. 'Many in the past have become Brahmins. In the Chhandogya Upanishad we read that the sage Jabala of an unknown class became a Brahmin. It is written in the Mahabharata that Vishwamitra, Kshatriya by birth, became a Brahmin, so did the sage Matang, an outcast by birth. Even at the present day, he who possesses the qualities, functions and temperament of a Brahmin, is respected as such and the ignorant are treated as Shudras. So will it be in the future.'

'Varna–Vyavastha should be based on the qualities, functions and temperament of the individuals. '

Rishi Dayanand has established Arya Samaj with a view to building the nation and rebuilding Indian Society. So, Arya Samaj should streamline and effectively implement the Varna System. Arya Samaj is facing an internal problem today as there is plurality of leaders and it is short of a national team. A hundred persons, working as a national team and making ten small teams, can complete a thousand jobs. But a thousand people without a team-work cannot complete ten jobs.

Problems and diseases can be overcome by following a scientific line of "do's and don'ts". Arya Samaj will also have to follow the line strictly. It is an institution

of scholars who study and explain the Vedas. They can hopefully discipline it and seek help from other institutions as well.

The Puranas are enormous mixtures of good and bad. However, their readers include a category of persons who believe in the authority of Vedas on the point of Four Varnas, based on qualifications and not on birth. Such persons are equal in number with the persons belonging to Arya Samaj, and hence, substantial in this nation-building-programme.

The Ramcharitmanas, not strictly Vedic in nature, accepts the principle of Four Varnas. The Gita clarifies the definition of the Four Varnas and preaches to follow the System. The persons, following these books, and constituting the above mentioned institutions, can and should come forward to streamline the Varna System.

Rishi Dayanand took part in dozens of Shastrarthas or Debates. Everywhere he pressed for the authority of Vedas, and he achieved victory after victory in the Debates. The three institutions mentioned above unfortunately keep the three books as equal to Vedas. They will have to give it up, in the interest of rebuilding the Vedic Society. Since they present their books to be in conformity with the Vedas, it becomes their duty to announce the authority of Vedas in black and white. This is how they can contribute towards the strengthening of Four Varnas' Society.

Dr. B.R. Ambedkar clearly states that the System of Four Varnas was based on qualifications and not on birth. He criticises the Caste System almost as Rishi Dayanand does. But his followers keep themselves distant from Arya Samaj only to get the government aids, admissible to the Listed Castes. They have passed through several series of sorrows because of the malpractices of wrong Varna Compliance.

When Rishi Dayanand challenged these malpractices and pressed for the original System of Varnas based on qualifications and not on birth, they followed Arya Samaj. But when the government announced aids to Listed Castes, they turned their face to the Lists and back to Arya Samaj. Government aids are good for limited periods. Now they should join hands with Arya Samaj.

All boys and girls should be given one and same education, without considerations of caste and community. They should not be named as Hindu, Muslim, Brahmin or the like. They must be taught all religious books equally. After attaining the age of 18 or 21, they should be asked to choose a religion and a Varna for them. Man can't be good or bad on the basis of birth. Once the Varna System is restablished in Bharat, our forces will be organised, and we shall again have an Incredible Bharat. ******

यज्ञस्य प्राविता भव (ऋग ३.२१.३)
तू यज्ञ का रक्षक बन ।

मूर्तिपूजा तर्क, विज्ञान और अध्यात्म की कसौटी पर

मूर्तिपूजा बुद्धि और विवेक, धर्म और संस्कृति, विज्ञान और ज्ञान सभी को नष्ट करती है। मूर्ति पूजा ईश्वर पूजा का एक मुख्य अंग समझा जाता है। भारतवर्ष में विशेषकर और दूसरे देशों में भी साधारण लोग किसी न किसी प्रकार की मूर्ति पूजा करते हुए पाए जाते हैं। जो लोग अपने को मूर्तिपूजक नहीं कहते वह भी किसी न किसी प्रकार की मूर्ति पूजते हैं। मुसलमान लोग संगे अस्वद यानी काले पत्थर को चुमते हैं। ईसाईयों के किसी न किसी सम्प्रदाय में ईसा, मरियम तथा अन्य ईसाई महात्माओं की पूजा की जाती है। हिंदू धर्म में तो मूर्तियां भगवान है , जो मूर्ति नहीं पूजता उसको बहुत से लोग नास्तिक समझते हैं, परन्तु इसके साथ ही साथ एक और बात देखने में आती है कि संसार में समय–समय पर जितने सुधारक हुए हैं उन सब ने मूर्ति पूजा के विरुद्ध आवाज उठाई है और मूर्ति पूजा को बुरा बतलाया है। मुसलमानों के पैगंबर मोहम्मद साहब के लिए तो मशहूर ही है कि वह मूर्तियों को तोड़ते थे। ईसाइयों की बाइबिल में लिखा है कि मूर्ति पूजा मत करो। जब ईसाइयों ने मूर्ति पूजन आरम्भ किया तो ईसाई धर्म के सुधारक ***जॉन क्लिफ*** ने इंग्लैंड में लोगों को मूर्तिपूजा छोड़ने के लिए उपदेश ही दिया। ***जर्मनी*** में ***लूथर*** ने भी ऐसा ही किया। ***स्कॉटलैंड का नाक्स और जिनेवा का काल्विन*** भी मूर्ति पूजा के विरुद्ध प्रचार करता था। यह अवस्था तो विदेशियों की रही। शायद लोग समझते हैं कि हिंदुस्तान में हिन्दू लोग सदैव मूर्ति ही पूजते रहे और इनके महात्माओं ने कभी मूर्ति पूजा के विरुद्ध प्रचार नहीं किया। परन्तु यह भूल है। यहां के बड़े–बड़े विद्वान् महात्मा मूर्ति पूजा के विरुद्ध समय–समय पर अपनी आवाज उठाते रहे हैं।

कबीर दास जी ने लिखा –

कबीर पाहन परमेश्वर किया पूजै सब संसार।
इस भावा से जो रहे बूढ़े काली धार।

दादू जी ने मूर्ति पूजा का खंडन करते हुए लिखा –

मूरत गढ़ी पाषाण की किया सिरजनहार।
दादू सॉच सूझे नहीं यू डूबा संसार।
दादू पत्थर पूजै धोए कर पत्थर पूजे प्राण।
अंतकाल पत्थर भये बहु बड़े इह ज्ञान।।

नानक जी ने भी मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए लिखा – ***मरम भूले नर करत आचरण।***
जन्म मरण ते रहित नारायण।।

इन सब बातों से प्रकट होता है कि कुछ दाल में काला है, नहीं तो इतने विद्वान् लोग एक स्वर होकर मूर्ति पूजा का खंडन नहीं करते। जितनी मूर्तियां आजतक पूजी जाती रही हैं वह या तो संत महात्माओं की हैं जैसे पारसनाथ आदि की या बड़े–बड़े राजा महाराजाओं की जैसे श्री राम, श्री कृष्णा या देवताओं की जैसे शिव, गणेश देव आदि की ।

निराकार और निर्विकार ईश्वर की मूर्ति नहीं है और न हो सकती है। बहुत से लोग यह समझते हैं कि निराकार ईश्वर की तो मूर्ति नहीं हो सकती परन्तु ईश्वर अवतार लेकर साकार हो जाता है इसलिए उसकी मूर्ति हो सकती है। परन्तु यह लोग समझते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य सदा बदलता रहता है उसी प्रकार ईश्वर भी बदलता है। कभी साकार होता है कभी निराकार, कभी जन्म लेता है कभी मरता है । वस्तुतः ईश्वर को बदलने वाला मानना उसका अपमान करना है। लोगों ने अपनी कमजोरियां ईश्वर में आरोपण कर दी हैं। जैसे वह जन्म लेते, बढ़ते और मर जाते हैं उसी प्रकार वह ईश्वर को भी जन्म लेने वाला, बढ़ने और मरने वाला समझते हैं। जिस प्रकार उनको भूख, गर्मी, जाड़ा लगता है उसी प्रकार वह समझते हैं कि ईश्वर को भी भूख, जाड़ा, गर्मी लगती है। इस लिए वह मंदिरों में मूर्तियों को भोग लगाते, रजाई उढ़ाते और पंखा चलाते हैं। जैसे उनको सोते में उठाने के लिए जगाने की जरूरत होती है, उसी प्रकार मूर्तियों को भी सुलाते और जगाते हैं। वह बेचारे यह नहीं जानते कि ईश्वर मनुष्यों की तरह निर्बल नहीं है। ईश्वर को वेदों में एकरस और अजन्मा माना है। जैसे यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के मंत्र में लिखा गया है जिसका अर्थ है कि ईश्वर सर्वव्यापक, मंगलकारी अकाय

यानी शरीर से रहित है उसके अनुसार नाडियों में फंसा नहीं है, शुद्ध है, उसे पाप नहीं लग सकता। इससे प्रकट होता है कि ईश्वर निराकार है और कभी साकार नहीं होता।

अब प्रश्न उठता है निराकार ईश्वर सृष्टि को कैसे बनाता है? इसका समाधान यह है बनाने वाले तो सभी निराकार होते हैं जैसे तुम लिखते हो लिखने वाले तुम निराकार हो। जो तुम्हारा साधन है वह साकार है। इसी प्रकार एक और सामान्य प्रश्न उत्तर निराकार ईश्वर को भी साकार शरीर की जरूरत होती है कि नहीं ? इसका उत्तर है नहीं होती! जीव में दो कमजोरियां हैं ,एक तो वह सर्वव्यापक नहीं है दूसरा वह सर्वशक्तिमान नहीं है। ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान दोनों है इसलिए वह जिस चीज को बनाना चाहता है या मिट्टी व पानी के जिस परमाणु को मिलाना चाहता है उसमें व्यापक होने के कारण बिना शरीर के उसको मिला देता है। आपको एक मोटी बात तो सोचनी चाहिए अगर निराकार ईश्वर कुछ न बना सकता तो अपना शरीर ही कैसे बनाता। यदि कहो कि अपना शरीर बिना साकार हुए बना सकता है तो सारी सृष्टि उसी पर बना सकता है। दूसरी सामान्य सी बात या सोचनी चाहिए कि यदि श्रीराम और श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते हो तो यह बताओ कि उनके मरने के पश्चात् ईश्वर फिर निराकार हो गया कि नहीं? वस्तुतः ईश्वर अवतार नहीं लेता वह निराकार है, संसार में जितनी शक्तिशाली चीज है वह सब निराकार है, जैसे बिजली, वायु आदि।

हम यहां ईश्वर निराकार है उसके बारे में कुछ चर्चा करेंगे। उसकी मूर्ति नहीं बन सकती इसलिए मूर्ति पूजा नहीं हो सकती और मूर्ति पूजा को भी कभी ईश्वर पूजा नहीं कह सकते। वेद में लिखा है ***न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः*** / अर्थात् उसके जैसा कोई और प्रतिमा नहीं है जिसका नाम बड़े यश वाला है। तुलसीदास जी ने लिखा है– ***बिनु पग चले सुने बिनु काना! बिन कर कर्म करे विधि नाना।*** तुलसीदास जी उस ईश्वर को मानते हैं जो निराकार अवस्था में ही सारी सृष्टि की रचना कर सकता है। कुछ लोग यह कहते हैं उसका ध्यान कैसे करें ? पहली बात तो यह है ईश्वर की मूर्ति बनाते हो, उनकी मूर्तियां ही संसार में नहीं पाई जाती हैं। जो चीज न प्राप्त होती हो उसकी मूर्ति बनाने से उसकी प्राप्ति हो जाए। एक साकार वस्तु से दूसरी वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती। रोटी की मूर्ति बनाने से रोटी की प्राप्ति नहीं होती। रोटी की मूर्ति पूजने से पेट नहीं भरता। पानी का चित्र पूजने से प्यास नहीं बुझती। कपड़ों की तस्वीर का ध्यान करने से जाड़ा नहीं जाता। फिर ऐसी मूर्तियों का ध्यान करने से जिनके आंख, कान, नाक, झूठमूठ के बने हैं किस प्रकार निराकार ईश्वर का ध्यान हो जाएगा? यदि पीपल का ध्यान करने से समझें कि तुझे नीम की प्राप्ति हो गई यह उसकी मूर्खता होगी। इसी प्रकार पाषाण की मूर्ति का ध्यान करके समझना कि मैं ईश्वर को पूजता हूं बहुत बड़ी भूल है। यदि कोई अपने पिता का चित्र देखे तो उस पिता के शरीर की आकृति का ज्ञान होगा उस चित्र को देखने से किसी ऐसी चीज का ज्ञान नहीं हो सकता जिसका वह चित्र नहीं है। ईश्वर की कोई मूर्ति है ही नहीं फिर उसी मूर्ति के देखने से ईश्वर के किसी गुण का ज्ञान कैसे हो सकता है ? कुछ लोग यह प्रश्न उठाते हैं कि हम तो मूर्ति को नहीं पूजते किन्तु मूर्ति में व्यापक ईश्वर को पूजते हैं यह भी एक भ्रमित प्रश्न है । सर्वप्रथम तो यह ही गलत है कि तुम मूर्ति को नहीं पूजते। संसार के सभी मूर्तिपूजकों के व्यवहारों से यह प्रकट है कि वह वस्तुतः मूर्ति को ही पूजते हैं, उसमें व्यापक ईश्वर को नहीं । युक्ति मात्र के लिए ऐसा कह देते कि हम मूर्ति को नहीं पूजते। हम देखते हैं सभी मंदिरों में देवताओं को भोग लगाते हैं, उनके आगे घंटा घड़ियाल और झांज बजाते हैं, कपड़ा उढ़ाते हैं और पंखा चलाते हैं । मूर्ति को सजाते हैं। सजाकर हाथ जोड़ते हैं। हाथ जोड़कर यह मान लेते हैं कि पत्थर की भगवान वाली मूर्ति ने उसके सारे व्यवहार स्वीकार कर लिए हैं और वह भगवान की कृपा प्राप्त कर लेगा। अब प्रश्न उठता है कि इन क्रियाओं से किस वस्तु की प्राप्ति होती है?

ईश्वर सब में व्यापक है परन्तु लेकिन जब तक आत्मा और परमात्मा का मेल नहीं होगा तब तक ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता है। और वह मेल का केवल एक स्थान है जहां तुम और ईश्वर दोनों हैं– वह है हृदय। प्रत्येक व्यक्ति निज हृदय में ईश्वर का दर्शन कर सकता।

सामान्य प्रश्न पूछा जाता है मूर्ति के बिना हम ध्यान कैसे करें। इसका उत्तर है, ध्यान के लिए मूर्ति की आवश्यकता नहीं है यदि मूर्ति की ओर देखते रहो तो

तुम्हारा ध्यान ही न जाएगा इसलिए लोग ध्यान करते समय आंख बंद कर लेते हैं । आंखों का बंद करना ही बताता है कि ध्यान के लिए मूर्ति की आवश्कता नहीं, ध्यान तो ईश्वर के गुणों का करते हो। ईश्वर के गुणों का ध्यान मूर्ति को देखकर कैसे आएगा। अनेक लोग कहते हैं कि मूर्ति को देख कर उसमें आ जाएगा किसी को देखकर की व्यापकता का ध्यान किसी को नहीं होता यदि तुम पूछते रहो अपने मन की करो जब तुम अपने मन से पूछो कि क्या तुम मूर्ति पूज रहे थे अपने मन से पूछो कि क्या तुम ईश्वर की सर्व व्यापकता का ध्यान करते थे या नहीं? अगर तुम ईश्वर को सर्वव्यापक मानते तो अपनी उंगली देखकर ही उसकी सर्वव्यापकता का ध्यान कर लेते। तुम को इधर–उधर जाने और मूर्ति रखने का आवश्कता न पड़ती। तुम्हारा मूर्तियों की खोज में इधर–उधर भटकना यह बताता है कि तुम को ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास नहीं है। एक बात और है यदि तुम किसी सुन्दर मूर्ति को देखो तो उसके देखने से पहले तुमको मूर्ति बनाने वाले की बुद्धि का ज्ञान होता है। तुम देखते ही कहने लगते हो अरे वाह! कैसा अच्छा कारीगर है परन्तु तुमको उस मूर्ति के देखने से कभी यह पता नहीं लगता की मूर्ति की लकड़ी बनाने वाला ईश्वर कैसा कारीगर है। इसी प्रकार मूर्ति के बनाने वाले मनुष्य की कारीगरी तुम पर पहले प्रभाव डालती हैं तुमको स्वप्न में भी यह नहीं सोचता कि ये पत्थर को बनाने वाला कारीगर है या ज्ञान तो उन्हीं चीजों को देखने से हो सकता है इसमें मनुष्य का अपना हाथ नहीं जैसे सूर्य चांद पर्वत नदी आदि इसलिए यदि ईश्वर की कारीगरी का ज्ञान प्राप्त करना हो तो ईश्वर की बनाई हुई उन चीजों पर गौर करो जिनको मनुष्य अपनी कारीगरी द्वारा तब्दील नहीं किया और यदि ईश्वर का ध्यान करना है तो करो।

कुछ लोगों का यह भी प्रश्न है मूर्तिपूजा सनातन से चली आ रही है फिर उसको क्यों छोड़ा जाए। इसका समाधान है मूर्ति पूजा सनातन से नहीं चली आ रही है। मूर्तिपूजा जैनियों के समय से प्रारम्भ हुई है। अधिक से अधिक 5000 वर्ष पहले की है अथवा बताइए कौन सी मूर्ति सनातन है श्री राम कृष्ण की बापदादा श्री कृष्ण जी की मूर्ति को नहीं पूजते थे और न महाराज दशरथ राजा रघु की राम की मूर्ति पूजा का वर्णन नहीं मिलता। ऐसे संसार में भी सब मूर्तियों के लिए कहा जा सकता है सनातन सुना है पर उसके अर्थ पर अभी विचार नहीं किया। सनातन तो क्यों निराकार ईश्वर की मूर्ति पूजा ही हो सकती है क्योंकि जो अनुसार में पहले हुआ वह भी इस प्रकार पूजा कर सकता है जो प्रथा बीच में चल पड़े बकरी का लाई जा सकती।

मूर्तिपूजा के दोषों पर दृष्टि डालते हैं महर्षि दयानन्द ने लिखा है साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता क्योंकि उसको मन ग्रहण करके उसी के एक–एक अवयवो में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार परमात्मा के ग्रहण में असमर्थ मन अत्यंत दौड़ता है तो भी अंदर नहीं पाता। योगसाधना साध लेने पर मन चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण, कर्म, स्वभाव का विचार करता करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर होता है तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता। क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है तुरन्त किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगाएं क्योंकि उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिए पूजा करना। दूसरी बात जो दोष के रूप में ***सत्यार्थप्रकाश*** में महर्षि ने बताया है उसमें करोड़ों रुपए मंदिरों में व्यय करके हम दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है। स्त्री पुरुषों का मंदिरों में मेल होने से व्यभिचार, लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं और उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन माना जाता है। दुष्चरित्र, पाखंडी और अंधविश्वासी व्यक्ति और मूर्त्तियों के पुजारी एक होकर सत्य के विरुद्ध चलकर आपस में फूट डालकर देश–समाज का नाश करते हैं ।

ऐतिहासिक घटना है सोमनाथ के मंदिर सहित अनेक मंदिरों की सोने की मूर्तियों को विदेशी उठा कर अपने देश ले गए। मंदिरों को तोड़ डाला, इसका प्रमाण है जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वर की उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्तियां धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे? और निरन्तर इन ठगों के कारण धर्म का पतन होता है और संसार के लोग पीड़ित होते रहते हैं। जो दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मांसाहार लड़ाई

बखेडों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुख होता है। मूर्तिपूजा को ईश्वर–प्राप्ति का साधन वे मानते हैं जो न तो परमात्मा को जानते और मानते हैं और न ही अध्यात्म को। मूर्तिपूजा न तो तर्क की कसौटी पर आजतक सत्य सिद्ध की जा सकी है और न ही धर्म व अध्यात्म के दृष्टिकोण से ही।

20वीं–21वीं सदी के लोगों में मूर्तिपूजा के प्रति अंधश्रद्धा, अंधविश्वास और कुतर्क उसी तरह के हैं जैसे 18–19वीं सदी के लोगों में थी। आश्चर्य तो तब होता है जब स्वयं को शिक्षित कहने वाले लोग भी अशिक्षितों की तरह बेसिर–पैर की बातें करते हैं और अपनी अंधश्रद्धा को श्रद्धा, अंधविश्वास को विश्वास और पाखंड को वास्तविक बताने के लिए कुतर्कों का सहारा लेते हैं। बचपन से पीढ़ी–दर–पीढ़ी के मूर्तिपूजा और अंधविश्वास वाले संस्कार व्यक्ति को सत्य, शुभ, ज्ञान–विज्ञान और धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर करते ही हैं अपितु विद्या से भी दूर कर देते हैं।

अब आप सोचिए। एक बार नहीं, दो बार नहीं, अनगिनत बार सोचिए–मूर्तिपूजा, व्रत, भागवत कथा, तथाकथित तीर्थयात्रा और तेरही से कौन–सी अनमोल और तुम्हारा कल्याण करने वाली वस्तु की प्राप्ति होती है? इस लेख के प्रकाशन का हमारा उद्देश्य यह है कि आप सुधी पाठक जन मूर्तिपूजा के दुष्परिणामों को समझ सकें और ज्ञान–विज्ञान के परम पावन मार्ग पर आगे बढ़कर अपना और समाज के कल्याण के लिए कुछ योगदान दे सकें।**************************

प्रेरक प्रसंग

अन्न दो प्रकार से दूषित होता है

यह उस समय की घटना है जब महर्षि दयानन्द फर्रुखाबाद में कुछ दिन के लिए प्रवास में थे। उस समय फर्रुखाबाद में कुछ ऐसे लोग थे जो 'साधु' कहे जाते थे। लेकिन वे गृहस्थी थे। उनके हाथ का बना भोजन वहां के पंडे–पुजारी नहीं खाते थे। एक दिन साधु कहा जाने वाला व्यक्ति बहुत श्रद्धा के साथ थाल में परोसकर कढ़ी और भात ले आया। महर्षि ने प्रसन्नता के साथ भोजन ग्रहण किया। यह देख वहां उपस्थित जाति के ब्राह्मणों ने कहना प्रारम्भ किया –"स्वामीजी, आप तो साधु का भोजन ग्रहणकर भ्रष्ट हो गए। आपको ऐसा करना कदापि उचित नहीं था।"

जातिभेद और ऊंच–नीच को ही धर्म मानने वाले उन जातिवादी ब्राह्मणों की बात का उत्तर देते हुए महर्षि बोले– ***अन्न दो प्रकार से दूषित होता है, एक तो तब जब दूसरे को दुख देकर प्राप्त किया जाए, और दूसरे जब कोई मलीन वस्तु उस पर अथवा उसमें पड़ जाये। इन लोगों का अन्न परिश्रम के पैसे का है और पवित्र है। इसलिए इनको ग्रहण करने में दोष लेश भी नहीं।***

दयानन्द : एक व्यक्ति के रूप में

– डॉ० जे० टी० एफ० जॉर्डन्स

दयानन्द का व्यक्तित्व ऐसा नहीं है जिसे किसी साधरण सूत्र में बाँध लिया जाय। उसके अनेक पूरक पहलू हैं। इनमें जो नितान्त स्पष्ट है वह यह है कि अपनी युवावस्था से पूर्ण परिपक्व होने तक दयानन्द स्वयं–चालित, स्वावलम्बी, असम व्यक्तित्ववाले थे। उनके पिता या गुरुजन भी उनकी जीवन–यात्रा का मार्ग निर्धारित नहीं कर सके। न तो कोई धार्मिक शक्ति और न राजनैतिक सत्ता उन पर दबाव डाल सकी। उन्हें अपना रास्ता खुद तय करना पड़ता और किस दिशा में जाना है, इसका निर्धारण भी वे स्वयं ही करते। उनकी अपनी समाज भी उन्हें अपना नेता या गुरु बनाकर किसी बन्धन में नहीं डाल सकी। उनका यह निर्भीक व्यक्तित्व उनके चिन्तन और प्रयत्नों के विविध आयामों की मौलिकता का आश्चर्यप्रद स्रोत था। यह उनका प्रबल आत्मविश्वास ही था जो कभी–कभी ऐसे दर्प का भाव पैदा कर देता था जिसके कारण लोग उनसे दूर हट जाते, अनेक उनके शत्रु बन जाते। उनके स्वभाव की कठोरता का परिणाम यह निकलता कि वे लोगों की सम्यक परख नहीं कर पाते।

दयानन्द का यह सुदृढ़ व्यक्तिवाद आश्चर्यजनक क्रियाशील मनोभूमि से जुड़ा था। मूलतः वे सक्रिय व्यक्ति थे। संन्यासी बनने का मतलब उनके लिए यह नहीं था कि वे एक ऐसे क्षेत्र में चले जायें, जहाँ केवल ध्यान करते हुए एकान्त में रहना है। उन्होंने अपने प्रौढ़ जीवन के प्रारम्भिक पन्द्रह वर्ष मोक्ष की तलाश में व्यतीत किये, किन्तु उनकी यह गवेषणा धैर्य धारण करते हुए लक्ष्य के अचानक सामने आ जाने के लिए नहीं थी किन्तु उन्होंने इसके लिए क्रियाशीलता से भरपूर प्रचण्ड प्रयत्न किये जिनके कारण कभी–कभी उन्हें शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कष्ट भी उठाने पड़े। अपनी दीर्घकालीन योग साधना के समय उन्होंने अपने शरीर असीम शारीरिक और मानसिक साधनों से सम्पन्न कर लिया। अब उनमें कार्य करने की इतनी क्षमता आ गई जिसे देखकर अनेक शक्तिशाली लोग भी आश्चर्यान्वित हो जाते। सक्रिय रहना ही मानो उनके लिए ईश्वरीय आदेश था। उनकी यह मनःस्थिति उनके नैतिक उपदेशों में व्यक्त हुई है, जहाँ उन्होंने कहा था कि मनुष्य की उत्कृष्टता और श्रेष्ठता इसी में है कि वह सदा क्रियाशील रहे, स्वतन्त्र रहकर स्वकर्त्तव्य पालन में लिप्त रहे। क्रियाशील जीवन का यह आदर्श हमें वहाँ दिखाई देता है जब वे समाज के ऊपर निर्भर रहनेवाले पराश्रयी लोगों की कठोर आलोचना करते हें। उनकी आलोचना से वे संन्यासी भी नहीं बच सके जो आलस्य और प्रमाद का जीवन व्यतीत करते हैं तथा भिक्षोपजीवी बने हुए हैं। उन पुरोहितों की भी उन्होंने आलोचना की जो धर्म का व्यवसाय करते हैं। वे राजा भी उनकी आलोचना से नहीं बच सके जो प्रजा का शोषण करते हैं और खुद विलास की जिन्दगी जीते हैं । स्वामीजी ने अपने पत्रों में अपने अनुयायी आर्यों को कठोरता से सम्बोधित किया जब उन्होंने देखा कि ये लोग गम्भीर बातों को गम्भीरता से नहीं लेते।

जीवन तथा उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति दयानन्द की दृष्टि उनकी दो प्रवृत्तियों से जुड़ी है जो यों तो परस्पर विरुद्ध दिखाई देती हैं, किन्तु हैं नहीं। प्रथम–सिद्धान्तों के प्रति सम्मान तथा आशावाद। एक बार यदि वे किसी नैतिक या धार्मिक सिद्धान्त को सत्यता को जान लेते तो उन्हें उससे विमुख करने की शक्ति किसी में नहीं थी। जीवन भर प्रभावशाली लोग तथा उनके निकटस्थ मित्र यदा–कदा उन्हें सिद्धान्तों से समझौता करने के लिए कहते किन्तु उनको निराशा ही मिलती। स्वामी दयानन्द को अपने दृष्टिकोण से विचलित करने की सामर्थ्य किसी में नहीं थी। चाहे उन्हें यह भय दिखाया जाये कि ऐसा करने से उनका प्रभाव घटेगा, वे समाज से बहिष्कृत कर दिये जायेंगे, उनके मित्र उनसे दूर हट जायेंगे, जीवन पर संकट आ जायेगा इनमें से कोई स्थिति उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकती थी। इसी प्रकार सम्पत्ति का प्रलोभन, अथवा उनके सुधार कार्य में सहायता जैसी

बातें भी उन्हें अपने निर्धारित लक्ष्य से दूर नहीं कर सकती थीं। अपने सिद्धान्तों से उनकी प्रतिबद्धता पूर्णतया तर्क पर आश्रित तथा अनम्य थी। वे प्रत्येक चीज के दो पहलू ही जानते थे––शुक्ल या कृष्ण। किन्तु जीवन में अस्पष्टता होती है, अनिश्चितता रहती है, और ये तत्त्व इन्सान के विचार तथा व्यवहार में भी किसी न किसी रूप में रहते ही हैं। उच्च सिद्धान्तों और तर्कवाद के प्रति दयानन्द का प्रतिबद्ध भाव यदा कदा उन्हें कट्टर बना देता है और वे अन्यों के दृष्टिकोण को समझने में निश्चय ही असफल रहते हैं। देवगाथावाद, प्रतीकवाद अथवा आलंकारिक अभिव्यक्ति के पीछे भी कोई सच्चाई है, इसे समझने में उनका शब्दानुसरण करनेवाला व्यवहार बाधक होता है क्योंकि वे अभिधार्थ को हो प्रधानता देते हैं। लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ को नहीं।

तथापि यह कट्टर सिद्धान्त–निष्ठा एक ठोस आशावाद से जुड़ी है। इसके द्वारा वे स्थिति का अध्ययन करते हैं, नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उसके तत्त्वों की परीक्षा करते हैं और एक उपयुक्त निर्णय लेते हैं। युवावस्था में उन्होंने संन्यास ले लिया इसलिए कि इससे उनके अध्ययन में सुविधा रहेगी। उनके विचार में अध्ययन ही अत्यन्त महत्त्व का कार्य था। अध्ययन में अधिक समय लगाने के लिए ही उन्होंने दण्ड का विसर्जन कर दिया क्योंकि दण्ड विषयक जटिल कर्मकाण्ड में समय अधिक लगता था और शास्त्राध्ययन में विघ्न पड़ता था। जब संस्कृत का गम्भीर अध्ययन करने का समय आया तो स्वयं प्रौढ़ आयु के होने पर भी अपने से छोटी आयु के सहपाठियों के साथ स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ। गंगा–यमुना के तटवर्ती प्रदेश में कौपीन मात्र धारण कर भ्रमण करनेवाले इस संन्यासी को पुस्तक, वस्त्र, सेवक प्राप्त करने, यहाँ तक कि निज का मुद्रणालय लगाने में भी कोई संकोच नहीं हुआ क्योंकि वे जानते थे कि लोकहित के लिए ये आवश्यक हैं। जब स्वस्थापित पाठशालाओं से उद्देश्य की प्राप्ति होती प्रतीत नहीं हुई तो उन्हें बन्द करने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया। जब पंजाब के आर्यसमाजियों ने कहा कि बम्बई में निर्मित आर्यसमाज के नियमों में सैद्धान्तिक सामग्री अत्यधिक है तो उन्होंने इन नियमों को अधिक से अधिक लोगों द्वारा स्वीकार किये जाने के तर्क को समझकर नियमों में कमी करना भी मान लिया। यद्यपि वे भक्ष्याभक्ष्य तथा स्पृश्यास्पृश्य विषयक सभी रूढ़ियों के विरोधी थे तथा उन्हें व्यर्थ मानते थे किन्तु यदि उन्हें तोड़ने से वे धर्म बहिष्कृत किये जाते हैं तथा व्यापक हिन्दू धर्म पर उनके प्रभाव में कमी आती है तो उन्हें मानने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया। स्वामीजी की व्यावहारिकता विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रश्न पर यथार्थतया प्रकट हुई थी। उनकी मान्यता थी कि द्विजों में नियोग व्यवस्था ही सर्वोत्तम है किन्तु यदि नियोग को स्वीकृति नहीं मिलती है तो विधवाओं की वर्तमान दुर्दशा को देखते हुए उनका विवाह कर देना सर्वोत्तम है। तथापि यह कहना उचित है कि उनकी यह व्यावहारिक नीति सिद्धान्तहीन या विद्वेषपूर्ण नहीं थी। यह शान्तभाव से लिए निर्णय पर आधारित होती थी तथा इसमें वे अपने द्वारा स्वीकृत मूल्यों का भी ध्यान रखते थे। जो स्वामीजी द्वारा निर्धारित नैतिकता के उस पैमाने से सहमत नहीं होते उनकी दृष्टि में यह केवल अवसरवादिता थी।

अपनी भीतरी मानसिक शक्तियों तथा आत्म नियन्त्रण के विद्यमान रहने पर भी दयानन्द मूलतः बहिर्मुखी थे। वे क्रियाशील थे जिनका मस्तिष्क सदा वर्तमान और भविष्य की बात सोचता है। इसके कारण उन्हें प्रभावशाली व्यक्तित्व मिला। वे एक अच्छे वाग्मी सिद्ध हुए तथा चुम्बकीय करिश्माई व्यक्तित्ववाले कहलाये। उन्होंने कभी विगत का अनावश्यक चिन्तन नहीं किया। उन्हें पर्याप्त चिन्तन के पश्चात् जब यह विश्वास हो जाता कि अमुक विचार या कार्यपद्धति ठीक नहीं है तो वे उसे त्यागने में देर नहीं करते। इस परिवर्तन पर वे अनावश्क रूप से सोचते भी नहीं, यहाँ तक की अपने पूर्व में मान्य विश्वास का अविलम्ब प्रत्याख्यान कर देते। यदि कोई व्यक्ति उनकी मान्यता में किसी असंगति की ओर उनका ध्यान दिलाता तो वे स्पष्ट घोषित कर देते कि सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् उन्होंने अपनी मान्यता बदल दी है और इससे पहले वे जो मानते थे वह अज्ञानता के कारण था। उन्होंने अपने आर्य भक्तों से भी यही दृष्टिकोण अपनाने के लिए कहा। वे अतीत की भस्म में लोटना पसंद नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में अतीत की अनुपयुक्त बातें दूर हटा देने तथा भूल जाने योग्य है। उनके विरोधियों ने सत्यार्थप्रकाश के पहले और दूसरे संस्करण में

असंगतियाँ, अस्थिर विचार, यहाँ तक कि द्वैध कथन तक के आरोप लगाये। आर्यों ने उसके प्रतिवाद में कहा कि दोनों सत्यार्थप्रकाशों में जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह प्रक्षेपकारों की दुष्टता है। यदि यही सवाल खुद दयानन्द से पूछा जाता तो उनका उत्तर स्पष्ट होता—मैंने आठ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ लिखा था। इसमें की अनेक बातें आज अप्रासंगिक हैं क्योंकि मैं अपने मन के विचारों को बदल दिया है। आप यह बतायें कि मेरे आज के विचारों में आपको क्या गलत नजर आता है?

ऐसा क्यों हुआ कि एक व्यक्ति केन्द्रित, उच्च सिद्धान्तोंवाले व्यक्ति को अपने विचार बार—बार बदलने पड़े ? गत शती के आठवें दशक में स्वामी दयानन्द के जो महत्त्वपूर्ण विचार थे उन्हें विकसित होने तथा परिवर्तित होने में कई वर्ष लगे थे। कारण यह है कि दयानन्द नये विचारों को ग्रहण करने में सदा तत्पर रहे, अपने अध्ययन तथा मानसिक क्षितिज को विस्तार देने में लगे रहे। हमारे इस अध्ययन में स्वामीजी पर प्रभाव डालनेवाले तत्त्वों की चर्चा आई है। उन पर प्रभाव डालनेवाले तत्त्व थे—स्वामी विरजानन्द और मथुरा का तत्कालीन परिवेश, फर्रूखाबाद के समय के साध लोग, बंगाल के प्रबुद्ध लोग, पंजाब के खत्रियों की आकांक्षाएँ तथा वहाँ का वातावरण, ईसाई मत की बातें, देवेन्द्रनाथ ठाकुर लिखित ब्राह्म धर्म, सांख्य दर्शन तथा वृद्धिगत आर्यसमाज। किन्तु दयानन्द की यह ग्रहणशीलता कभी निष्क्रिय या गतिहीन नहीं रही। उन्होंने प्रत्येक नये विचार को अपने तर्क तथा कार्य को जाँचा, परखा और जो भी उस परीक्षा की अग्नि में खरा उतरा, उसे नया रूप देकर उन्होंने स्वीकार कर लिया। यदि कोई चाहे तो दयानन्द के निम्न विचारों को उनकी क्रमबद्ध विकास की प्रक्रिया में देख सकते हैं—उनके ईश्वर, जीव तथा वेद सम्बन्धी विचार, वैदिक स्वर्ण युग विषयक धारणा, आर्यसमाज के कर्त्तव्य, शासन के कर्त्तव्य तथा राष्ट्रवाद का स्वरूप। इसके पश्चात् हम यह भी देख सकते हैं कि किन प्रभावों ने उक्त विचारों को यह रूप दिया ? साथ हो यह भी मानना होगा कि जो अन्तिम विचार उभर कर आया वह सर्वथा अद्वितीय, एक नई कृति था। स्वामीजी का मन नये विचारों को ग्रहण करने में सदा उन्मुक्त रहा किन्तु उन्होंने जो भी ग्रहण किया उसे एक नये मौलिक रूप में बदल दिया। स्वामीजी के अनुयायियों ने उनको गुरु का उच्च पद देकर उनकी इस प्रबल परिवर्तनशीलता का न केवल न्यून आकलन किया है अपितु उसे सर्वथा नकार दिया है। ऐसा करके उन्होंने दयानन्द के प्रभावशाली व्यक्तित्व के इस पहलू, उनकी निरन्तर गतिशीलता, परिवर्तन को स्वीकार करने की उनकी प्रतिभा तथा नये विचारों और नूतन क्षितिजों तक पहुँचने की उनकी ग्रहणशीलता के साथ न्याय नहीं किया ।

स्वामी दयानन्द के जीवन के प्रति दृष्टिकोण के एक अन्य पहलू की भी उपेक्षा हुई है, क्योंकि यह पहलू उनके मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण निष्प्रभ कर दिया गया है। हम इस विचार के केन्द्रीय भाव को ही लेंगे जो इस संसार में बसी मानव जाति के प्रति हितचिन्तन का भाव है। इस विचार के साथ जो अन्य परिष्कृत तथा कलापूर्ण विशेषण जुड़े हैं, हमें उनसे कोई मतलब नहीं। दयानन्द प्रचलित अर्थ में बहुत अधिक परिष्कृत (आभिजात्य या भ्रद्र) रुचि के व्यक्ति नहीं हैं, वे बुनियादी बातों को महत्त्व देनेवाले, सीधी बात कहने और सुनने को पसन्द करनेवाले, स्पष्ट वक्ता हैं। वे कोई कलामर्मज्ञ नहीं हैं और न इस बात का कोई संकेत मिलता है कि उन्हें कला या सौन्दर्य की प्रशंसा करने की कभी जरूरत थी या इसके लिए उनके पास समय भी था। वे मानवतावादी थे किन्तु उनकी दृष्टि में इन्सान की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही उसका चरम आदर्श नहीं है। ***दयानन्द की दृष्टि में मानव की पूर्णता का एक पहलू यह भी है कि वह इस धरती पर सुखी और समृद्धि युक्त जीवन व्यतीत करे।*** यह बात उनके द्वारा आदर्श पारिवारिक जीवन के यत्र—तत्र चित्रण से प्रकट होती उन्होंने परिवार में सम्पन्नता, शान्ति, सन्तोष, पारिवारिक सदस्यों में परस्पर प्रीति आदि पर अधिकाधिक और बार—बार जोर दिया हैं। एक आदर्श समाज तथा आदर्श राज्य की उनकी जैसी कल्पना थी उसमें उन्नत अर्थ—तन्त्र, गरीबी का निराकरण, धन और शिक्षा का समान वितरण और प्रत्येक मनुष्य की योग्यता के अनुसार उसे उचित रोजगार दिया जाना सम्मिलित था। दयानन्द भूख, गरीबी, पीड़ा तथा अनावश्यक त्याग में विश्वास नहीं करते थे और न इन्हें सकारात्मक मूल्य समझते थे। दयानन्द का यह मानववाद उनके मोक्ष सिद्धान्त में भी दिखाई देता है। उनके अनुसार मोक्ष वह दशा है

जिसमें ईश्वर चिन्तन के अतिरिक्त जीव तथा जगत् के बीच सूक्ष्म सम्बन्ध बना रहता है।

ऐसे थे स्वामी दयानन्द, एक निराला व्यक्ति जिसमें क्रियाशीलता कूट–कूट कर भरी है, सिद्धान्तनिष्ठ होने पर भी जो व्यावहारिक है, आत्मा और अन्तःकरण की गहराई तक पहुँचा हुआ, किन्तु सदा वर्तमान की सोचनेवाला, तथा अच्छे भविष्य के लिए कर्म– तत्पर, ऐसे मस्तिष्कवाला जो सदा परिवर्तित होनेवाले संसार से भी उचित को ग्रहण करने के लिए तैयार, किन्तु संसार के अनुचित दबाव के आगे अनम्य, सभी के लिए अच्छे और सुखद जीवन का सपना देखनेवाला, केवल धार्मिक सन्तुष्टि ही नहीं, किन्तु सामाजिक और आर्थिक सन्तुष्टि को लक्ष्य माननेवाला। दयानन्द की इन मौलिक चारित्रिक विशेषताओं के प्रकाश में ही स्वामीजी को सीमाओं तथा अतिवादिता, उनकी दृश्यमान कठोरता, उनकी कट्टरता आदि को भली–भाँति समझा जा सकता है। अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि यही वे परस्पर विरुद्ध दीखनेवाली छायाएँ हैं जो उस महापुरुष की महानता को उजागर करती हैं जिसने स्वयं को उन्नीसवीं सदी का असाधारण व्यक्ति बना दिया था। ***********************************

–दयानन्द सरस्वती : हिज लाइफ एण्ड आइडियाज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, १९७८, पृ० २८४–२८५

हो गया है धर्म लँगड़ा, आस्था से दो सहारा।
मानवी संवेदना को, मैं बचाना चाहता हूँ।।

मत लपेटो झूठ के परिधान में, अपना भरोसा।
नफरतों के भँवर से, तुमको बचाना चाहता हूँ।।

भूलको स्वीकार करना, स्वच्छ मनकी है निशानी।
झाड़कर कचरा सभी, उर से हटाना चाहता हूँ।।

सार्थक वा समुन्नत उपदेश है, कुछ कर दिखाओ।
आचरण गरिमामयी, सबको सिखाना चाहता हूँ।।

– अनंगपाल सिंह भदौरिया

हे महर्षि शत् शत् वंदन

जिसने जीवन दीप जलाया, करने को उजियाला।
वह था देव दयानंद प्यारा, मानव एक निराला।।
जिसका पल पल बीता केवल, परहित की चिंता में।
उस ऋषि की किससे उपमा दूं,मैं अपनी कविता में।।

ओज तेज बल बुद्धि ज्ञान का, पुंज पुरुष ऐसा था।
गगनांगन में दीप्त भानु की, प्रखर रश्मि जैसा था।।
अति निस्पृह निर्लेप संत वह, परम सिद्ध योगी था।
मोक्ष पंथ का पथिक तपस्वी, निर्भय उद्योगी था।।

थी अखंड श्रद्धा वेदों पर, जिसके शुद्ध हृदय में।
सत्य धर्म और न्याय कर्म का,पाठ पढ़ा लघु वय में।
सच्चे शिव को फिरा ढूंढता,वन में गिरि गहवर में।
ऐसा भक्त न होगा प्रभु का, कोई दुनिया भर में।।

पिया शंभु ने गरल कभी पर, किंवदंति है यह तो।
मेरे ऋषि ने पिया जहर था, चरित उठा कर देखो।।
घातक पर भी दया दिखाई, प्राणदान देकर के।
ऐसा पुरुष नहीं पाओगे, देखो कोशिश करके।।

दे स्वराज्य का महामंत्र,निज देश प्रेम सिखलाया।
अपनी जाति धर्म भाषा का, गौरव खूब बढ़ाया।।
वेद भाष्य कर वेदों की, अनुपम शिक्षा समझ आई।
गो करुणानिधि रच गायों की, महिमा हमें बताई।।

सब सद् ग्रंथों को निचोड़, सत्यार्थ प्रकाश बनाया।
पाखंडों के महाभंवर से, हम को मुक्त कराया।।
ऐसा कोई विषय नहीं है,जिस पर वह न बोला।
तर्क कुंचिका सेशंका के,उसने हर ताले को खोला।।

सकल विश्व को आर्य बनाने,का जो संकल्प लिए था।
ओम ध्वजा भूमंडल पर,फहराने का लक्ष्य किए था।।
अगणित हैं उपकार ऋषि,कब तक इन्हें गिनाऊं।
गौरव गिरि इतना ऊंचा है, मैं कैसे चढ़ पाऊं।।

श्रद्धा भक्ति प्रेम से मेरी, गर्दन झुक जाती है।
सच कहता हूं प्यारे ऋषि की,याद बहुत आती है।।
हे महर्षि शत शत वंदन,सादर नमन हमारा।
यह कृतज्ञ भारत मानेगा, बहु आभार तुम्हारा।।

– वेद कुमार दीक्षित

महर्षि दयानन्द : समाज संस्कृति और वेद धर्म के उद्धारक

–अखिलेश आर्येन्दु

विश्व समाज जिस दौर से आज गुजर रहा है। वहाँ महर्षि दयानन्द के विचार इतने उपयोगी, व्यावहारिक और निष्पक्ष हैं कि यदि उन पर गौर किया जाए तो दुनिया की तमाम जटिलताएँ, समस्याएँ, विसंगतियाँ, हिंसा, विकृतियाँ, दुर्वृतियाँ और अनाचार खत्म हो सकते हैं। दयानन्द की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वे बाबा वाक्य प्रमाणम् को धोखा कहते हैं और उससे बचने के लिए प्रेरित करते हैं।

एक ऐसा युगधर्मी महामानव जिसने तत्कालीन विद्वत समाज धर्म के धुरंधरों और विचारकों को ही नहीं उस वक्त के रजवाड़ों को भी नई दिशा दी। उन्होंने अपने किसी विचार को रूढ़ि में बांधना कभी अच्छा नहीं समझा। इस लिए दयानन्द एक ओर जहाँ प्रगतिवादी हैं तो वहीं अत्यंत गम्भीर तर्कवादी, जहाँ वे धर्म को तर्क पर कसकर स्वीकारने की बात करते हैं तो अध्यात्म को अपने अनुभव और क्रिया पर। मानव की भलाई जिसमें हो दयानन्द उस बात को उस कार्य को सबसे बेहतर और हितकारी मानते दिखाई पड़ते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में जो विवेचनाएं प्रस्तुत की हैं और ज्ञान–विज्ञान को तर्कसंगत ढंग से रखा है वह सारा का सारा ज्ञान और तथ्य मानव समाज के सुधार, सुख शांति, आपसी प्रेम, करुणा, दया, सहिष्णुता, न्याय अहिंसा की स्थापना सत्य को आधार मानकर और शुभत्व को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत किया। दुराग्रह, आग्रह, स्वार्थ और किसी भी तरह के पक्षपात को दूर दूर तक दयानन्द के जीवन में हम नहीं पाते हैं।

वह अपने भ्रमण और कार्यों के दौरान यदि मुस्लिम नेताओं के यहाँ टिकते थे तो ईसाई और पारसी के यहाँ भी रहकर उपदेश देते थे। कोई ऐसा व्यक्ति या वर्ग नहीं था जो दयानन्द के बारे में यह कह सके कि उन्होंने उसके साथ भेदभाव किया या अन्याय किया। क्षमा, दया, करुणा, न्याय, धर्म और सत्साहस तो उनके रोम–रोम में पिरोया हुआ था। इस लिए दयानंद को आज के संदर्भ में हमें उनके समग्र विचारों, कार्यों, व्यवहारों और चरित्र को पूरी तरह निष्पक्ष और अपने आग्रह–दुराग्रह से अलग हटकर समझने की जरूरत है। यदि दयानन्द हमें सही मायने में समझ आ गये तो समाज और संस्कृति तथा तथाकथित धर्म के नाम पर होने वाले पाखंडों और अनाचारों को बहुत कम समय में खत्म किया जा सकता है।

आज धर्म, अध्यात्म और समाजसेवा के नाम पर जिस तरह से आम जनता को ठगा और लूटा जा रहा है, उसका समाधान यदि किसी महामानव के पास है तो वह दयानन्द के पास है। दयानन्द जहाँ धर्म के असली रूप, रंग और ढंग को बताते हैं तो अध्यात्म के महत्त्व को भी जीवनोत्थान और समाजोत्थान के परिपेक्ष्य में समझाते हैं। वह सेवा के असली मर्म को समझाते हैं और प्रेरणा देते हुए कहते हैं, यदि मानव हो तो अपने मानव होने के नाते अपने कर्तव्यों को समाज के कल्याण के लिए समर्पित करो। समाज कल्याण के मद्देनजर ही उन्होंने शिक्षा और संस्कार को बेहतर ढंग से देने पर जोर दिया, साथ ही अनेक वैदिक शिक्षा केंद्र खोले जो वैदिक शिक्षा प्रणाली के अनुरूप थे।

दयानन्द ने वेदों को मानव जाति के कल्याण के लिए जरूरी बताया और कहा–वेद में वर्णित शिक्षा, विज्ञान, धर्म, अध्यात्म, कृषि, उद्योग–धंधे, चिकित्सा, राजनीति, समाजनीति, संस्कृति और जीवन कल्याण के सूत्रों को न जानने के कारण समाज में इतनी अव्यवस्थाएं, समस्याएं, जटिलताएं और कुरीतियां फैली हुई हैं। ईश्वर के सही रूप, धर्म के सच्चे स्वरूप, विज्ञान की उपयोगिता, राजनीति के कल्याणकारी सूत्र और समाजनीति के सर्वकल्याण के सारे विषयों को उन्होंने तर्कसंगत और विज्ञान संगत ढंग से रखा। सत्यार्थ प्रकाश और उनकी लिखित अन्य पुस्तकों में सभी चीजों को देखा जा सकता है। दयानन्द ने धर्म, अध्यात्म, विज्ञान, सेवा, समाज, संस्कृति और मानव उत्थान का नाम पर होने वाली लूट और ठगी से बचने के सूत्र बताया व मत, मजहब को धर्म से अलग

किया। उन्होंने कहा– धर्म में किसी प्रकार की संकीर्णता, स्वार्थ, हिंसा, दुराग्रह, विकृति और बुराइयां नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसी चीजें वहां समाहित हैं तो वह धर्म नहीं कुछ दूसरा ही होगा।

दयानन्द यह नहीं कहते कि तुम मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें स्वर्ग या मोक्ष दिला दूंगा। दयानन्द यह भी नहीं कहते कि मेरी प्रत्येक बात को हर किसी को आंख मूंदकर मान लेना चाहिए। उन्होंने बहुत साफ शब्दों में कहा– यदि मेरी कहीं बातें किसी को नहीं रुचती या समाज के अनुरूप नहीं लगती तो ज्ञानवान लोग मिल–बैठकर उसमें सुधार कर लें। ईश्वर, धर्म, योग, शिक्षा, अध्यात्म और कल्याण के नाम पर समाज में बढ़ रहे अनाचार, अनैतिकता, अमानवीयता, हिंसा, शोषण, जुल्म और हर तरह के भेदभाव को पूरी शक्ति के साथ उन्होंने तब रोका था जब समाज पूरी तरह से दिग्भ्रमित हो चुका था। उन्होंने चरित्र की साफगोई को मानव के लिए सबसे जरूरी बताया। उनका चरित्र गंगोत्री के गंगा जल जैसा निर्मल तो नवनीत जैसा मुलायम था। जो बातें दयानन्द समाज और व्यक्ति कल्याण में कहते हैं– सभी वेद के आधार पर हैं। उन्होंने कहा– ***मैं अपनी तरफ से कुछ नया नहीं कह रहा हूं, बल्कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक के सभी ऋषियों ने जो विश्व कल्याण में कहा– उसे ही आगे बढ़ा रहा हूं।***

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के जरिए समाज सुधार, समाजहित, धर्म उत्थान, संस्कृति उत्थान, समाज विकास और भाषा हित में आंदोलन चलाए। अंग्रेजों को देश से भगाकर, देश को आजाद कराने के लिए यदि किसी ने पहली बार अंग्रेजों को ललकारा, तो वह दयानन्द थे। देश की दुर्दशा देखकर जहाँ अत्यंत व्यथित होते हैं वहीं पर महिलाओं, दलितों, पिछड़ों, असहायों, निर्धनों और दीनहीन लोगों के ऊपर हो रहे जुल्म, शोषण, अत्याचार, हिंसा और प्रताड़ना को देखकर उनके कल्याण के लिए भी आगे आते हैं। उन्होंने जात–पाँत, छुआछूत, भेदभाव, अशिक्षा, महिलाओं की दुर्दशा और गौवंश के विनाश को रोकने के लिए भी अनेक कार्य किए। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहाँ दयानन्द की दृष्टि न गई हो। वह ऐसा सत्साहसी, सत्यवादी, परोपकारी, दयावान, क्षमावान, ज्ञानवान और धर्म संवाहक महामानव थे जिनके रोम–रोम में मानव, समाज, देश, संसार और सर्वहित की भावना निहित थी। उन्होंने वेदों का उद्धार किया, तो हिंदी भाषा को आर्य भाषा(श्रेष्ठ), संस्कृति के उन्नयन और समाज के प्रत्येक वर्ग के कल्याण के लिए अनगिनत कार्य किए।

आर्यसमाज आज भले ही समाज सेवा, समाज सुधार, धर्म उत्थान, अध्यात्म प्रचार और संस्कृति रक्षा के कार्य वैसा न कर पाता हो–जैसा महर्षि चाहते थे, लेकिन आज भी आर्यसमाज का प्रयास यही रहता है कि देश, समाज, संस्कृति, हिंदी भाषा, संस्कृत भाषा, स्वदेशी, शाकाहार, स्वालम्बन और लोगों के चरित्र निर्माण के कार्य में उसकी भूमिका किसी न किसी रूप में होनी ही चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज रूपी जो वटवृक्ष लगाया था उसने आजादी की लड़ाई से लेकर आजादी मिलने के बाद अनगिनत कार्य किए। आज भी अपनी शक्ति के मुताबिक समाजसेवा और धर्म उत्थान के कार्य में लगा हुआ है। महर्षि दयानन्द ने जिस आर्यसमाज को मानव–कल्याण को ध्यान में रखते हुए लगाया था, उसे पुनः नए सिरे से कार्य करने में जुटना चाहिए।

जन्म - जिसमे किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म में समर्थ होता है ; उसको **जन्म** कहते हैं ।

मरण - जिस शरीर को प्राप्त होकर जीव क्रिया करता है, उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है उसको **मरण** कहते हैं ।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

वेदों के शिव

– प्रियांशु सेठ

हिन्दू समाज में मान्यता है कि वेद में उसी शिव का वर्णन है जिसके नाम पर अनेक पौराणिक कथाओं का सृजन हुआ है। उन्हीं शिव की पूजा–उपासना वैदिक काल से आज तक चली आती है। किन्तु वेद के मर्मज्ञ इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार वेद तथा उपनिषदों का शिव निराकार ब्रह्म है।

पुराणों में वर्णित शिव जी परम योगी और परम ईश्वरभक्त थे। वे एक निराकार ईश्वर "ओ३म्" की उपासना करते थे। कैलाशपति शिव वीतरागी महान् राजा थे। उनकी राजधानी कैलाश थी और तिब्बत का पठार और हिमालय के वे शासक थे। हरिद्वार से उनकी सीमा आरम्भ होती थी। वे राजा होकर भी अत्यंत वैरागी थे। उनकी पत्नी का नाम पार्वती था जो राजा दक्ष की कन्या थी। उनकी पत्नी ने भी गौरीकुंड, उत्तराखंड में रहकर तपस्या की थी। उनके पुत्रों का नाम गणपति और कार्तिकेय था। उनके राज्य में सब कोई सुखी था। उनका राज्य इतना लोकप्रिय हुआ कि उन्हें कालांतर में साक्षात् ईश्वर के नाम शिव से उनकी तुलना की जाने लगी।

वेदों के शिव –

हम प्रतिदिन अपनी सन्ध्या उपासना के अन्तर्गत ***नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च (यजु० १६/४१)*** के द्वारा परम पिता का स्मरण करते हैं।

अर्थ – जो मनुष्य सुख को प्राप्त कराने हारे परमेश्वर और सुखप्राप्ति के हेतु विद्वान् का भी सत्कार कल्याण करने और सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले का भी सत्कार मङ्गलकारी और अत्यन्त मङ्गलस्वरूप पुरुष का भी सत्कार करते हैं, वे कल्याण को प्राप्त होते हैं।

इस मन्त्र में शंभव, मयोभव, शंकर, मयस्कर, शिव, शिवतर शब्द आये हैं जो एक ही परमात्मा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

वेदों में ईश्वर को उनके गुणों और कर्मों के अनुसार बताया है–

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।
–यजु० ३/६०

विविध ज्ञान भण्डार, विद्यात्रयी के आगार, सुरक्षित आत्मबल के वर्धक परमात्मा का यजन करें। जिस प्रकार पक जाने पर खरबूजा अपने डण्ठल से स्वतः ही अलग हो जाता है वैसे ही हम इस मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जायें, मोक्ष से न छूटें।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि।।
– यजु० १६/२

हे मेघ वा सत्य उपदेश से सुख पहुंचाने वाले दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिए सुखकारी शिक्षक विद्वन् ! जो आप की घोर उपद्रव से रहित सत्य धर्मों को प्रकाशित करने हारी कल्याणकारिणी देह वा विस्तृत उपदेश रूप नीति है उस अत्यन्त सुख प्राप्त करने वाली देह वा विस्तृत उपदेश की नीति से हम लोगों को आप सब ओर से शीघ्र शिक्षा कीजिये।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव।।
–यजु० १६/५

हे रुद्र रोगनाशक वैद्य! जो मुख्य विद्वानों में प्रसिद्ध सबसे उत्तम कक्षा के वैद्यकशास्त्र को पढ़ाने तथा निदान आदि को जान के रोगों को निवृत्त करनेवाले आप सब सर्प के तुल्य प्राणान्त करनेहारे रोगों को निश्चय से ओषधियों से हटाते हुए अधिक उपदेश करें सो आप जो सब नीच गति को पहुंचाने वाली रोगकारिणी ओषधि वा व्यभिचारिणी स्त्रियां हैं, उनको दूर कीजिये।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।।
– यजु० १६/४६

हे राजा के वैद्य तू जो तेरी कल्याण करने वाली देह व विस्तारयुक्त नीति देखने में प्रिय ओषधियों के तुल्य रोगनाशक और रोगी को सुखदायी पीड़ा हरने वाली है उससे जीने के लिए सब दिन हम को सुख कर।

उपनिषदों में भी शिव की महिमा निम्न प्रकार से है—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्सः शिवस्सोऽक्षरस्सः परमः स्वराट्।
स इन्द्रस्सः कालाग्निस्स चन्द्रमाः।।
— कैवल्यो० १/८

वह जगत् का निर्माता, पालनकर्ता, दण्ड देने वाला, कल्याण करने वाला, विनाश को न प्राप्त होने वाला, सर्वोपरि, शासक, ऐश्वर्यवान्, काल का भी काल, शान्ति और प्रकाश देने वाला है।

प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम् चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।।७।।
— माण्डूक्य०

प्रपंच जाग्रतादि अवस्थायें जहां शान्त हो जाती हैं, शान्त आनन्दमय अतुलनीय चौथा तुरीयपाद मानते हैं वह आत्मा है और जानने के योग्य है।

यहां शिव का अर्थ शान्त और आनन्दमय के रूप में देखा जा सकता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृष्टारमनेकरुपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।।
— श्वेता० ४/१४

परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, हृदय के मध्य में विराजमान है, अखिल विश्व की रचना अनेक रूपों में करता है। वह अकेला अनन्त विश्व में सब ओर व्याप्त है। उसी कल्याणकारी परमेश्वर को जानने पर स्थाई रूप से मानव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

नचेशिता नैव च तस्य लिंङ्गम्।। —श्वेता० ६/६

उस शिव का कोई नियन्ता नहीं और न उसका कोई लिंग वा निशान है।

योगदर्शन में परमात्मा की प्रतीति इस प्रकार की गई है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।
१/१/२४

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।। १/१/२६

वह ईश्वर प्राचीन गुरुओं का भी गुरु है। उसमें भूत भविष्यत् और वर्तमान काल का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वह अजर, अमर नित्य है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भी अपने पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में निराकार शिवादि नामों की व्याख्या इस प्रकार की है —

(रुदिर् अश्रुविमोचने) इस धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है।'यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः' जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है, इससे परमेश्वर का नाम ***'रुद्र'*** है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।।

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है।

जीव जिस का मन से ध्यान करता उस को वाणी से बोलता, जिस को वाणी जे बोलता उस को कर्म से करता, जिस को कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है। इस से क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते, तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उन को रुलाता है, इसलिए परमेश्वर का नाम ***'रुद्र'*** है।

(डुकृञ् करणे) 'शम्' पूर्वक इस धातु से 'शङ्कर' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्करः' जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेहारा है, इससे उस ईश्वर का नाम ***'शङ्कर'*** है।

'महत्' शब्द पूर्वक 'देव' शब्द से 'महादेव' शब्द सिद्ध होता है। 'यो महतां देवः स महादेवः' जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है, इस लिए उस परमात्मा का नाम 'महादेव' है।

(शिवु कल्याणे) इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। 'बहुलमेतन्निदर्शनम्।' इससे शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण करनेहारा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम ***'शिव'*** है।

निष्कर्ष — उपरोक्त लेख द्वारा योगी शिव और निराकार शिव में अन्तर बतलाया है। ईश्वर के अनगिनत गुण होने के कारण अनगिनत नाम है। शिव भी इसी प्रकार से ईश्वर का एक नाम है। आईये निराकार शिव की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करे।